तमिलनाडु राज्य

बनाम

एल०अबू कावुर बाई और अन्य

(State of Tamil Nadu

v.

L. Abu Kavur Bai and Ors.)

तमिलनाडु राज्य

बनाम

वी०के० इलैयलवर और एक अन्य

(State of Tamil Nadu

v.

V. K. Elaiyalwar and Anr.)

नीलगिरी बस ट्रांसपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

तमिलनाडु राज्य और अन्य

(Nilgiri Bus Transport Pvt. Ltd.

v.

State of Tamil Nadu and Ors.)

मैसर्स कैम्पी गाउडर ट्रांसपोर्ट आदि

बनाम

तमिलनाडु राज्य और एक अन्य

(M/s. Kempy Gowder Transport etc.

v.

State of Tamil Nadu and Anr.)

(31 अक्तूबर, 1983)

(मुख्य न्यायमूर्ति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्या० एस० मुर्तजा फ़जल अली, बी०डी० तुलजापुरकर, ओ० चिन्नपा रेड्डी और ए० वरदराजन)

1. तमिलनाडु स्टेज कैरिजिस एण्ड कान्ट्रैक्ट कैरिजिस (एक्वीजीशन) ऐक्ट, 1973—सपठित संविधान, 1950—अनुच्छेद 31 ग और अनुच्छेद 39(ख) और (ग)—प्राइवेट प्रचालकों द्वारा चलाई जा रही मंजिली गाड़ियों और ठेका गाड़ियों का राज्य द्वारा उनकी कर्मशाला, उपकरण आदि सहित उक्त अधिनियम के अधीन राष्ट्रीयकरण। ऐसा राष्ट्रीयकरण विधिमान्य है और उक्त अधिनियम सभी प्रकार से सांविधानिकतः विधिमान्य है।

2. संविधान, 1950—अनुच्छेद 39(ख) और (ग)—अनुच्छेद 39(ख) में न तो जंगम सम्पत्ति का उल्लेख है और न ही स्थावर सम्पत्ति का अनुच्छेद 39(ख) में यथाउपबन्धित "भौतिक सम्पदा" अभिव्यक्ति अति व्यापक है जिसके अन्तर्गत न केवल प्राकृतिक या भौतिक सम्पदा ही आती है अपितु जंगम या स्थावर सम्पत्तियां भी आती हैं।

तमिलनाडु राज्य ने भिन्न-भिन्न प्रक्रमों पर राज्य परिवहन उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने के लिये एक अध्यादेश पारित किया और उसके बाद तमिलनाडु स्टेज कैरिजिस एण्ड कान्ट्रैक्ट कैरिजिस (एक्वीजीशन) ऐक्ट, 1973 अधिनियमित किया। अधिनियम के पारित होने के पूर्व ही, उक्त अध्यादेश को उन प्राइवेट प्रचालकों द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई जिनके परिवहनों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। मद्रास उच्च न्यायालय ने इस अध्यादेश तथा अधिनियम के प्रवर्तन को रोक दिया और इसके सभी उपबन्धों को शून्य घोषित किया। उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें और रिट पिटीशन फाइल किये गये हैं। मद्रास उच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का अतिक्रमण करने के आधार पर अधिकारातीत घोषित किया था और कहा था कि यह अनुच्छेद 31 ग में अन्तर्विष्ट संरक्षणों के भीतर नहीं आता है तथा इसे अन्य अनेक आधारों पर भी अधिकारातीत घोषित किया गया।

1983(10) eILR(PAT) SC 2

यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 31 ग के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए यह अधिनियम उक्त अनुच्छेद के संरक्षण के भीतर पूर्ण रूप से आता है क्योंकि तत्व और सार के अनुसार यह अधिनियम अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों को पूरा करना तथा उन्हें प्राप्त करना चाहता है और इसलिये वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 का अतिक्रमण करने के विरुद्ध पूर्णतः संरक्षित है। दूसरी ओर यह दलील दी गई है कि जिस रीति में अधिनियम के अधीन परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण किया गया है, वह अनुच्छेद 39(ख) और (ग) की परिधि के भीतर नहीं आता है क्योंकि ये बसें तथा ये मोटरयान राष्ट्रीयकरण की नीति का अभिन्न भाग नहीं है। यदि अधिनियम, एककों तथा कर्मशालाओं आदि को अपने अधीन ग्रहण किये बिना परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करता तो प्रचालकों के पास अपने जीवन निर्वाह के लिये कुछ कमाने का साधन बच पाता किन्तु अधिनियम द्वारा उन्हें जीवन निर्वाह के साधनों से पूर्णतया वंचित किया जाना अधिनियम को समपहरण करने वाले विधान की कोटि में लाता है और इसलिये वह शून्य है। अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—तमिलनाडु स्टेज कैरिजिस एण्ड कान्ट्रैक्ट कैरिजिस (एक्वीजीशन) ऐक्ट, 1973 संविधान के अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनार्थ अधिनियमित किया गया था और इसलिये इसे इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी कि उक्त अधिनियम या उसके उपबन्ध अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण करते हैं। ऐसा अनुच्छेद 31-ग के आधार पर था जिसे कि 25वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पुरःस्थापित किया गया था और जिसने ऐसे अधिनियमों को अनुच्छेद 14, 19 या 31 के प्रवर्तन से अपवर्जित करने के लिये संरक्षण प्रदान किया था। (पैरा 7)

नीति निदेशक सिद्धांतों तथा मूल अधिकारों के विधिक और ऐतिहासिक पहलुओं पर सावधानी से विचार करने पर इस प्रश्न के संबंध में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों में पूर्ण न्यायिक मतैक्य प्रतीत होता है कि यद्यपि नीति निदेशक सिद्धांत, प्रवर्तनीय नहीं हैं तथापि न्यायालय को नीति निदेशक सिद्धांतों एवं मूल अधिकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का वास्तविक प्रयास करना चाहिये और यथा-

सम्भव इन दोनों के बीच किसी प्रकार के विरोध से बचना चाहिये। (पैरा 11)

नये जोड़े गये अनुच्छेद 31ग को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट नीति निदेशक सिद्धांतों को प्राप्त करने की दृष्टि से या अनुपालन करने की दृष्टि से राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली कोई विधि शून्य नहीं समझी जायेगी भले ही वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 के साथ असंगत हो या उसका अतिक्रमण करती हो। आगे यह उपबंध किया गया है कि ऐसी कोई विधि जिसमें यह घोषणा अन्तर्विष्ट हो कि उसे कानूनी पुस्तक में ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिये रखा गया है, किसी भी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जा सकती कि नई विधि ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है। दूसरे शब्दों में स्थिति यह है कि यदि एक बार अनुच्छेद 31-ग को कानूनी पुस्तक में रख दिया जाता है तो यह प्रश्न कि कोई विधि भाग 3 (अनुच्छेद 14, 19 और 31) में अन्तर्विष्ट मूल अधिकारों का अतिक्रमण करती है, न्याय नहीं होगा। (पैरा 14)

अनुच्छेद 31ग को देखते हुए, जो कि अनुच्छेद 31(2) के विरूद्ध भी संरक्षण प्रदान करता है, न्यायालय अधिनियम को मात्र इस कारण अभिखण्डित नहीं कर सकते कि परिवहन सेवाओं या उसके एककों को अपने अधीन लेने के संबंध में दिये जाने वाले प्रतिकर की बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 31-ग समाजवाद के संबंध में एक पुरातनवादी दृष्टिकोण ही नहीं है अपितु उसमें एक सैद्धांतिक पहलू भी है। जिस द्वारा उत्पादन के सभी साधन, प्रमुख उद्योग, खान, खनिज, लोक प्रदाय, आवश्यक वस्तुएं और सेवाएं धीरे-धीरे लोक स्वामित्व, प्रबन्ध और नियंत्रण के अधीन ली जा सकती हैं। (पैरा 28)

यदि एक बार यह मान लिया जाता है कि परिवहन सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की नीति विधिमान्य है, जो कि निस्संदेह आश्वयक सेवा है और जिस पर एक प्रकार से राज्य को एकाधिकार है, अतः ऐसा करने से उसका यदि कोई भी परिणाम निकलता है तो उस पर विचार

नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा नहीं किया गया तो कभी भी किसी प्रकार का कोई सामाजिक सुधार नहीं किया जा सकेगा। एकाधिकार या राष्ट्रीयकरण की सभी स्कीमें जनसाधारण के फायदे के लिये होती हैं और ऐसे मामलों में व्यक्तिगत हितों को जनसाधारण के लाभों के सामने झुकना होगा। अधिनियम के विभिन्न उपबन्ध स्पष्ट रूप से न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रतिकर देने का, जो कि ग्रहण किये गये यूनिटों के बाजार मूल्य के समतुल्य नहीं होंगे, उपबन्ध करते हैं और उन्हें भ्रामक या न्यायालय के अन्तःकरण को धक्का पहुंचाने वाला नहीं कहा जा सकता। (पैरा 31)

यदि एक बार राष्ट्रीयकरण की नीति लोक हित में और जनसाधारण के फायदे के लिये है तो उस के कारण कुछ हानियां, कुछ नुक्सान, कुछ प्रतिकूल प्रभाव और कुछ कठोर परिणाम अवश्य निकलेंगे। किन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि पूर्वोक्त विचारों के कारण राज्य एकाधिकार या राष्ट्रीयकरण की नीति ज्यों की त्यों धरी रह जाये अन्यथा देश एक इंच भी प्रगति की ओर उस स्थान से नहीं बढ़ सकता जहां कि वह तब था जब हमारा संविधान प्रवृत्त हुआ था। (पैरा 67)

वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 39(ख) में न तो जंगम सम्पत्ति का उल्लेख है और न ही स्थावर सम्पत्ति का। वास्तविक अभिव्यक्ति "समुदाय की भौतिक सम्पदा" का प्रयोग किया गया है। अनुच्छेद 39(ख) में यथा उपबन्धित "भौतिक सम्पदा" अभिव्यक्ति अति व्यापक है जिसके अन्तर्गत न केवल प्राकृतिक या भौतिक सम्पदा ही आती है अपितु जंगम या स्थावर सम्पत्तियां भी आती हैं। (पैरा 76)

यदि राज्य कतिपय आवश्यक वस्तुओं या सम्पत्तियों का अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में वर्णित प्रयोजनों के लिए व्यापार करने का एकाधिकार चाहता है तो अनुच्छेद 31(2) पूर्ण रूप से अपवर्जित हो जाएगा, अन्यथा कोई भी राज्य एकाधिकार कदापि सम्भव नहीं है क्योंकि युक्तियुक्त रकम, जोकि प्रतिकर के रूप में देनी पड़ेगी, राज्य के वित्तीय साधनों या लोक राजकोष को इस हद तक पूर्णतः समाप्त कर सकती है कि किसी विशिष्ट व्यवसाय के एकाधिकार का आदर्श प्रयास लगभग असम्भव हो जाएगा जिसका तर्क सम्मत परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अनुज्ञात प्रयोजन का कार्यान्वयन भी असम्भव

हो जाएगा। इन कारणों से ही संसद् ने अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों का अनुच्छेद 31(2) की परिधि से संरक्षण करना उचित समझा था। दूसरे 25वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31 (2) ने प्रतिकर शब्द निकाल दिया है और उसके स्थान पर "रकम" शब्द रख दिया गया है जो राज्य को किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति लोक प्रयोजन के लिए ग्रहण करने की दशा में युक्तियुक्त रकम नियत करने का पर्याप्त विवेक प्रदान करती है, प्रस्तुत मामले में एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रयोजन जो कि संविधान में उपदर्शित है, अन्तर्वलित होने के कारण प्रतिकर के रूप में मात्र मामूली सी रकम देना अनुच्छेद 31(2) में अपेक्षित शर्तों का पर्याप्त अनुपालन होगा। (पैरा 82)

अनुच्छेद 31ग के अभिव्यक्त उपबन्धों को देखते हुए, जो अनुच्छेद 31(2) को भी उस दशा में अपवर्जित करता है जब कोई सम्पत्ति अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट सिद्धान्तों को प्रभावी करने के प्रकट प्रयोजन से लोकहित में अर्जित की जाती है, कोई प्रतिकर आवश्यक नहीं है और अनुच्छेद 31(2) के कारण कोई बाधा नहीं पहुंच सकती और यह कि यद्यपि विधि प्रतिकर का उपबन्ध करती है तथापि न्यायालय प्रतिकर के ब्योरों अथवा उसकी पर्याप्तता पर विचार नहीं कर सकते और राज्य के लिए यह साबित कर देना ही पर्याप्त है कि प्रतिकर युक्तियुक्त है और इतना भयंकर या भ्रामक नहीं है जिससे कि वह न्यायालय के अन्तःकरण को झकझोर दे। (पैरा 83)

अनुच्छेद 39 (ख) में प्रयुक्त "बंटा" शब्द का व्यापक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जिससे कि न्यायालय अनुच्छेद 39(ख) में अन्तर्विष्ट कानूनी उद्देश्य को पूर्ण और व्यापक प्रभाव दे सके। "बंटा" शब्द का संकीर्ण अर्थान्वयन उस मूल उद्देश्य को विफल कर सकता है जो कि अनुच्छेद प्राप्त करना चाहता है। (पैरा 85)

अतः इस अधिनियम को सभी प्रकार से सांविधानिकतः विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है। (पैरा 96)

अवलम्बित निर्णय

पैरा

[1983] [1983] 2 उम०नि०प० 777=(1983) 1 एस०सी०सी० 147 :
संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी बनाम मै० भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य
(Sanjeev Coke Manufacturing Co. *V.* M/s. Bharat Coking Coal Ltd. and Anr.); 20,25,56 80,90,96

[1981] [1981] 4 उम०नि०प० 543=[1981] 2 एस०सी० आर० 1 :
वामन राव और अन्य आदि, आदि बनाम भारत संघ और अन्य
(Waman Rao & Ors. etc. etc. *V.* Union of India & Ors.); 19,26,56

[1981] [1981] 3 उम० नि० प० 146=[1981] 1 एस०सी०आर० 206 :
मिनर्वा मिल्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(Minerva Mills Ltd. & Ors. *V.* Union of India & Ors); 17,18,56

[1978] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641 :
कर्नाटक राज्य और एक अन्य आदि बनाम रंगनाथ रेड्डी और एक अन्य आदि
(State of Karnataka & Anr. etc. *V.* Ranganatha Reddy & Anr. etc.); 6,23,24,32,56, 60,70,72,74, 79,89,93,96

निर्दिष्ट निर्णय पैरा

[1976] [1976] 1 एस०सी०आर० 906 :
केरल राज्य और एक अन्य
बनाम एम० एम० थामस और अन्य
(State of Kerala & Anr. *V*. M.M. Thomas & Ors.); 9

[1973] [1973] 2 उम० नि० प० 159=1973
सप्ली० एस०सी०आर० 1 :
महामहिम केशवानन्द भारती श्रीपदगलावेरू बनाम
केरल राज्य
(His Holiness Kesavananda Bharati Sripadagalaveru *V*. State of Kerala); 8,14,18,35, 60,63,82,

[1970] [1970] 3 उम० नि० प० 779=1970
(2) एस०सी०आर० 600 :
चन्द्र भवन बोर्डिंग एण्ड लाजिंग, बंगलोर बनाम
मैसूर राज्य और एक अन्य
(Chandra Bhavan Boarding & Lodging, Bangalore *V*. The State of Mysore & Anr.); 8

[1967] 1967 (2) एस०सी०आर० 762 :
आई० सी० गोल्क नाथ और अन्य बनाम पंजाब
राज्य और अन्य
(I.C. Golak Nath & Ors. *V*. State of Punjab & Ors.); 8

[1963] (1963) सप्ली० (2) एस०सी०आर० 691 :
एकादशी पधान बनाम उड़ीसा राज्य
(Akadasi Padhan *V*. State of Orissa); 29,30,67

पैरा

[1959] 1959 एस०सी०आर० 629:
मोहम्मद हनीफ कुरेशी और अन्य बनाम बिहार राज्य
(Mohd. Hanif Quareshi & Ors. V. State of Bihar); 8

[1959] 1959 एस० सी० आर० 995:
केरल एजुकेशन बिल, 1957 का मामला
(In Re. the Kerala Education Bill, 1957), 8

सिविल अपीली अधिकारिता : 1973 की सिविल अपील संख्या 957-966 (एन०) और 1976 की सिविल अपील संख्या 435-442 (इसके साथ 1982 की रिट याचिका संख्या 8818 और 1979 की रिट याचिका संख्या 312-313 की भी सुनवाई हुई)

1973 की रिट याचिका संख्या 1647, 1900, 1466, 1557, 1559, 1527, 1556, 1488, 1584 और 1585 तथा 1973 की रिट याचिका संख्या 741, 157, 132, 123, 288, 1486, 1528 और 876 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 24 अप्रैल, 1973 और 19 अप्रैल, 1973 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री एस०एस० रे, आर० के० गर्ग और ए०वी० रंगम

सिविल अपील संख्या 965, 966, 437 और 439 में — श्री विनीत कुमार

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से सिविल अपील संख्या 957 और 962 तथा 1982 की रिट याचिका संख्या 8818 में — श्री जी०एल० सांघी और कुमारी लिली थोमस

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से — सर्वश्री के० के० वेनुगोपाल, ए० के० सेन,

सिविल अपील संख्या 959, 960, 961, 963, 964 में और 1976 की सिविल अपील संख्या 435 से 442 में प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	ए० टी० एम० सम्पथ, एम० एन० रंगाचारी, एस० श्रीनिवासन और महाबीर सिंह
सिविल अपील संख्या 438 में प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	श्री जे० राम मूर्ति
1979 की रिट याचिका संख्या 312 और 313 में याचियों की ओर से	श्री ए० टी० एम० सम्पत
अटर्नी जनरल की ओर से मध्यक्षेपियों के रूप में	श्री के० जी० भगत, अपर सालिसीटर जनरल, कुमारी ए० सुभाषिणी, श्री टी० वी० एस० नरसिम्हा चारी और श्री सी० वी० सुब्बा राव
एहिरन ट्रांसपोर्ट की ओर से	श्री ए० वी० रंगम
के० ए० कनप्पा चेटी और टी० आर० शुभराज की ओर से	सर्वश्री ए० टी० एम० सम्पत, एम० एन० रंगाचारी, एस० श्रीनिवासन और महाबीर सिंह
उड़ीसा राज्य के महाधिवक्ता तथा चेरन ट्रांसपोर्ट एम्पलाइज यूनियन की ओर से	श्री बी० पार्थसारथी
जम्मू-कश्मीर राज्य के महाधिवक्ता की ओर से	श्री अशोक ग्रोवर
डी० कनिया पिल्लै, मैसर्स सुन्दरम फाइनेंस ओर श्री पी० टी० कृष्णन की ओर से	सर्वश्री ए० के० सेन, ए० टी० एम० संपत और सर्वश्री ए० के० सेन, ए० टी० एम० सम्पथ और श्री के० रामकुमार
असम राज्य की ओर से	श्री एस० के० नन्दी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति फजल अली ने दिया।

न्यायमूर्ति फजल अली—

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की नीति सामाजिक-आर्थिक उद्धार की दृष्टि से समानता के आधार पर समाज का निर्माण करने के लिए एक आधार-स्तम्भ है। सहजता से उपलभ्य, सस्ते और भरोसेमन्द परिवहन की सुविधा एक मुख्य सामाजिक आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश कोई भी राज्य अभी तक पूर्ण राष्ट्रीयकरण के द्वारा इस उद्देश्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहा है। मोटर यान अधिनियम के अध्याय 4-क के अधीन विरचित स्कीमों का अधिकतर अवलम्ब लिया जाता है।

2. शायद कर्नाटक ही एक ऐसा राज्य है जिसने जीवन के कष्टप्रद अनुभवों के आधार पर सम्पूर्ण परिवहन उद्योग का पूर्णरूपेण राष्ट्रीयकरण करने का कदम उठाया था किन्तु दुर्भाग्यवश वह उसे अभी तक पूर्णतः कार्यान्वित नहीं कर सका है।

3. दो प्रकार से परिवहन उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया जा सकता है :—

(1) जब सरकार मोटर यान अधिनियम के अध्याय 4-क [धारा 68(ख) और (ग)] के अधीन कार्य करती है और सम्यक प्रकाशन के पश्चात् मार्ग या मार्गों को अपने अधीन लेने के लिए स्कीम विरचित करती है और उसके संबंध में आक्षेप आमंत्रित करती है। आक्षेप प्राप्त होने के पश्चात् उनका विनिश्चय किया जाता है और अन्ततः कार्यवाही की जाती है। तथापि यह तरीका विलम्बकारी है और इस प्रक्रिया में समय लगता है जिससे कि प्रचालक विलम्बकारी तरीकों का प्रयोग करते हैं। इस पर भी आक्षेपों पर विनिश्चय होने के पश्चात् प्रचालक या संबंधित व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं होते हैं और वे न्यायालयों में अपीलें करते हैं। अधिकतर मामलों में इन विलम्बकारी तरीकों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयकरण की स्कीम को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त आम तौर पर इस प्रक्रिया का प्रयोग ऐसे मार्ग या मार्गों के लिए किया जाता है जिनका चयन सरकार करती है और धीरे-धीरे इन्हें क्रियान्वित किया जाता है जिसमें भी लम्बा समय लगता है।

(2) एक अन्य तरीका, जो कि अधिक प्रभावपूर्ण है या तो एकदम से या थोड़े समय में भिन्न-भिन्न प्रक्रमों पर सम्पूर्ण परिवहन सेवाएं चलाने के काम का यूनिटों सहित (यान, कर्मशाला आदि) राष्ट्रीयकरण करना है। यह तरीका संविधान के अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) के अधीन स्पष्ट रूप से अनुज्ञेय है, जैसा कि हम इस निर्णय के पश्चात्वर्ती भाग में विवेचन करेंगे।

4. कर्नाटक राज्य ने दूसरा तरीका अपनाया था और कुछ हद तक उसने सफलता प्राप्त की किन्तु वह किसी न किसी कारणवश कठिनाई में पड़ गया। कर्नाटक राज्य के तरीके का अनुसरण करते हुए ही तमिलनाडु राज्य ने धीरे-धीरे राज्य परिवहन उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने के लिए आक्षेपित अध्यादेश पारित किया जिसने बाद में तमिलनाडु स्टेज कैरिजिस एण्ड कान्ट्रैक्ट कैरिजिस (एक्वीजेशन) ऐक्ट, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) का रूप धारण किया। मद्रास उच्च न्यायालय ने इस अध्यादेश तथा अधिनियम के प्रवर्तन को रोक दिया और इसके सभी उपबन्धों को शून्य घोषित किया। परिणामस्वरूप परिवहन का राष्ट्रीयकरण प्रभावी नहीं हो पाया और उसकी प्रगतिशील नीति उसी दिन अवरुद्ध कर दी गई जिस दिन उसको कार्यशील किया गया।

5. उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध हमारे समक्ष अपीलें और रिट याचिका फाइल की गई हैं। मद्रास उच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को, संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का अतिक्रमण करने के कारण अधिकारातीत घोषित किया है और कहा है कि यह अनुच्छेद 31 ग में अन्तर्विष्ट संरक्षणों के भीतर नहीं आता है तथा इसे अन्य अनेकों आधार पर भी, जिनकी इसके बाद परीक्षा की जाएगी, अधिकारातीत घोषित किया है।

6. यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में सन्नि सिद्धान्तों को प्रभावी करने के लिए तमिलनाडु विधान मण्डल का यह प्रयास समानता के आधार पर समाज का निर्माण करने की दृष्टि से संविधान में प्रकल्पित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति करता। पूर्ण राष्ट्रीयकरण हो जाने से जनता और समुदाय के सदस्यों को उन सुविधाओं की अपेक्षा

1983(10) eILR(PAT) SC 26

बहुत बेहतर और अधिक सुविधाएं प्राप्त होतीं जो कि परिमिटों के अधीन यानों को चलाने वाले प्राइवेट प्रचालकों द्वारा उन्हें दी जा रही हैं। दूसरे, सेवाओं में कुशलता और प्रभावकारिता आ जाने के कारण निःसन्देह प्राइवेट प्रचालकों द्वारा दी जा रही सेवाओं की तुलना में यानों को चलाने की रीति और ढंग में सुधार होता। तीसरे, अधिनियम के पारित होने के पूर्व सम्पूर्ण सेवाएं वस्तुतः पर्दे के पीछे पूंजी लगाने वाले विभिन्न व्यक्तियों के माध्यम से उन प्रचालकों के नाम में चलाई जा रही थीं जिनके साथ उन्होंने भाड़ा-क्रेता करार किए थे। स्पष्ट रूप से इसके फलस्वरूप कुछ व्यक्तियों के हाथों में धन का संकेंद्रण हुआ। पूर्ण राष्ट्रीयकरण स्कीम (योजना) के प्रवृत्त होने से धन के संकेंद्रण का यह ढंग प्रारम्भ में ही समाप्त हो जाएगा जिसके परिणामस्वरूप देश के लोगों के बीच धन और सेवाओं का समान वितरण होता। चौथे, प्रचालकों द्वारा दी जा रही प्राइवेट सेवाएं, जिनका मूल आशय लाभ कमाना था, ऐसी नहीं थीं जिनसे कि यह पता चलता कि वे यात्रियों के लिए, अब तक उनकी पहुंच के बाहर दूर क्षेत्रों में ऐसी सेवाओं को पहुंचाने की इच्छा और सामर्थ्य रखते हैं तथा वे कुछ महत्वपूर्ण स्थलों तक ही अपनी सेवाओं को सीमित रखना चाहते हैं। जब राज्य सम्पूर्ण परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करता है तो यह देखना उसका निःसन्देह कर्तव्य होगा कि मोटर यान राज्य के दूरतम भाग या हिस्से में पहुंचे तथा यथासम्भव अधिक से अधिक यात्रियों की सेवा करे जिससे कि किसी को भी कोई असुविधा न हो। ये सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण स्कीम के कुछ प्रारम्भिक लाभ हैं जो कि सामने आएंगे और जनसाधारण की आदर्श रूप से सेवा करेंगे। यह हो सकता है कि इस प्रक्रिया में कुछ पूंजीपतियों को हानि उठानी पड़े और कुछ प्रचालक इस कारबार से हाथ धो बैठें किन्तु इसके लिए कुछ किया नहीं जा सकता क्योंकि हमारे संविधान की योजना यह है कि सम्पूर्ण समुदाय के बहत्तर फायदे और लाभ के लिए व्यक्ति विशेष के अधिकारों या लाभों को झुकना होगा। **कर्नाटक राज्य और एक अन्य आदि** बनाम **रंगनाथ रेड्डी और एक अन्य आदि**[1] (जिसे सुविधा की दृष्टि से इसमें इसके पश्चात् "कर्नाटक का मामला" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) में इनमें से कुछ बातों पर सविस्तार विचार किया गया था।

---

[1] [1978] एस० सी० आर० 641=[1978] 4 उम० नि० प० 324.

7. यह अधिनियम अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनार्थ था और इसलिए इसे इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी कि अधिनियम या उसके उपबन्ध अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण करते हैं। ऐसा अनुच्छेद 31-ग के आधार पर था जिसे कि पच्चीसवें संविधान संशोधन द्वारा पुनःस्थापित किया गया था और जिसने ऐसे अधिनियमों को अनुच्छेद 14, 19 या 31 के प्रवर्तन से अपवर्जित करने के लिए संरक्षण प्रदान किया था। अधिनियम के उपबन्धों पर विचार करने के पूर्व हम संक्षेप में अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक सिद्धान्तों के महत्व का उल्लेख कर दें जो कि इस प्रकार हैं—

> "39. राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से—
>
> . . . . . .
>
> (ख) समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;
>
> (ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।"

8. हम इस कठिन और नाजुक आधार का उल्लेख नहीं करेंगे कि क्या नीति निदेशक सिद्धान्तों या मूल अधिकारों को एक दूसरे पर अभिभावी होने की क्षमता प्राप्त है या नहीं। तथापि यह देखने में आएगा कि 1979 से अब तक इस न्यायालय ने अनेक मामलों में नीति निदेशक सिद्धान्तों के महत्व पर जोर दिया है। इन मामलों में से कुछ नीचे दिए गए हैं—

(क) मोहम्मद हनीफ कुरेशी और अन्य बनाम **बिहार राज्य**[1]

(ख) केरल एजुकेशन बिल, 1957 का मामला[2]

(ग) आई०सी० गोलक नाथ और अन्य बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[3]

---

[1] 1959 एस० सी० आर० 629, 648.

[2] 1959 एस० सी० आर० 995, 1020, 1022

[3] 1967 (2) एस० सी० आर० 762, 789-790.

(घ) चन्द्र भवन बोर्डिंग एण्ड लाजिंग, बंगलौर बनाम मैसूर राज्य और एक अन्य[1]

(ङ) महामहिम केशवानन्द भारती श्रीपदगलावेरू बनाम केरल राज्य[2]

9. केरल राज्य और एक अन्य बनाम एम० एम० थामस और अन्य[3] में हमारे में से एक (न्यायमूर्ति फजल अली) ने पूर्ववर्ती मामलों का पुर्नविलोकन किया था और एक ही स्थान पर इस प्रश्न से संबंधित सभी विनिश्चयों के विनिश्चयाधार को संगृहीत किया था।

10. इस विषय पर हाल ही के विनिश्चयों में यह दृष्टिकोण सामने आया है कि न्यायालयों को संविधान के भाग 4 में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक सिद्धान्तों का सामंजस्यपूर्ण निर्वचन करने का प्रयास करना चाहिए, भले ही नीति निदेशक सिद्धान्त प्रवर्तनीय न हों। अतः इन दोनों महत्वपूर्ण उपबन्धों के बीच सामंजस्य बिठाने का प्रयास करना चाहिए और ऐसे निष्कर्ष नहीं निकालने चाहिएं जो इन दोनों उपबन्धों के बीच जिनमें से एक भाग 3 में अन्तर्विष्ट है और दूसरा भाग 4 में विरोध पैदा करें। हमें यह बात समझनी चाहिए कि हमारे संविधान के निर्माताओं ने सोच समझकर इन सिद्धान्तों को शायद इस कारण प्रवर्तनीय नहीं बनाया था क्योंकि वे सरकार को समय-समय पर उसके सामर्थ्य, स्थिति और परिस्थितियों के अनुसार इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त ढील देना चाहते थे।

11. नीति निदेशक सिद्धान्तों तथा मूल अधिकारों के विधिक और ऐतिहासिक पहलुओं पर सावधानी से विचार करने पर इस प्रश्न के संबंध में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों में पूर्ण न्यायिक मतैक्य प्रतीत होता है कि यद्यपि नीति निदेशक सिद्धान्त प्रवर्तनीय नहीं हैं तथापि न्यायालय को नीति निदेशक सिद्धान्तों एवं मूल अधिकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का वास्तविक प्रयास करना चाहिए और यथासम्भव इन दोनों के बीच किसी प्रकार के विरोध से बचना चाहिए।

[1] [1970] 3 उम० नि० प० 779=1970(2) एस० सी० आर० 600, 612.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 159=1973 सप्ली० एस० सी० आर० 1.

[3] [1976] 1 एस० सी० आर० 906, 993 से 996 (372—386).

12. प्रस्तुत मामले में हमारा वस्तुतः संविधान के दूसरे चरण से अर्थात भाग 4 में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक सिद्धान्तों के महत्व से संबंध है। अब हम अनुच्छेद 31-ग के तात्पर्य, महत्व, परिधि, विस्तार-क्षेत्र और तर्क-आधार का विवेचन करेंगे। अनुच्छेद 31-ग इस प्रकार उद्धृत है —

> **"31ग कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति**
>
> अनुच्छेद 13 में किसी बात के होते हुए भी, कोई विधि जो भाग 4 में अधिकथित सभी या किन्हीं तत्वों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली हो, इस आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी कि वह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनती है या न्यून करती है; और कोई विधि जिसमें यह घोषणा हो कि वह ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए है, किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है:
>
> परन्तु जहां ऐसी विधि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाई जाती है वहां इस अनुच्छेद के उपबंध उस विधि को तब तक लागू नहीं होंगे जब तक ऐसी विधि को, जो राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखी गई है, उसकी अनुमति प्राप्त नहीं हो गई है।"

13. इस अनुच्छेद की संक्षिप्त पृष्ठभूमि और उद्भव, संविधान (पच्चीसवां संशोधन) अधितियम, 1971 के उद्देश्यों और कारणों में अन्तर्विष्ट है जिससे दर्शित होता है कि इस संशोधन को राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को प्रभावी करने में आने वाली कठिनाइयों पर काबू पाने के मुख्य उद्देश्य से पुरःस्थापित किया गया था।

14. नए जोड़े गए अनुच्छेद 31ग को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट नीति निदेशक सिद्धान्तों को प्राप्त करने की दृष्टि से या अनुपालन करने की दृष्टि से राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली कोई विधि शून्य

1983(10) eILR(PAT) SC 26

नहीं समझी जाएगी भले हो वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 के साथ असंगत हो या उसका अतिक्रमण करती हो। आगे यह उपबन्ध किया गया कि ऐसी कोई विधि जिसमें यह घोषणा अन्तर्विष्ट हो कि उसे कानूनी पुस्तक में ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए रखा गया है, किसी भी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जा सकती कि नई विधि ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता है। दूसरे शब्दों में स्थिति यह है कि यदि एक बार अनुच्छेद 31ग को कानूनी पुस्तक में रख दिया जाता है तो यह प्रश्न कि कोई विधि भाग 3 (अनुच्छेद 14, 19 और 31) में अन्तर्विष्ट मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है, न्याय्य नहीं होगा। अनुच्छेद 31ग में आगे यह उपबन्धित है कि जब कोई विधि राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाई जाती है तो इस अनुच्छेद के उपबन्ध केवल तभी लागू होंगे यदि उस विधि ने भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त की हो। हम यहां इस बात का उल्लेख कर दें कि प्रस्तुत मामले में यह बात निर्विवाद है कि आक्षेपित विधि को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली थी और इसलिए वह तमिलनाडु राज्य में पूर्ण रूप से उस दशा में प्रवर्तनीय है यदि वह अनुच्छेद 31-ग की शर्तों की पूर्ति करती है और वह निःसन्देह अनुच्छेद 31-ग की शर्तों की पूर्ति करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस संशोधन के एक सारवान् भाग को **महामहिम केशवानन्द भारती श्रीपदगलावेरू बनाम केरल राज्य**[1] (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'भारती के मामले' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) में 7 : 6 के बहुमत द्वारा विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया है किन्तु अनुच्छेद 31-ग के एक भाग को अविधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था।

15. अनुच्छेद 31-ग की परिधि विस्तारक्षेत्र और सांविधानिक विधिमान्यता पर विचार करते हुए **भारती**[1] के मामले में बहुमत द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 31-ग का प्रथम भाग विधिमान्य है किन्तु दूसरा भाग अर्थात् "और कोई विधि जिसमें यह घोषणा हो कि वह ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए है, किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है" अविधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था। दूसरे शब्दों में जहां तक कि हमारे समक्ष मामले के वर्तमान पहलू का संबंध है, बहुमत

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्ली० एस० आर० 1.

निर्णय में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि जबकि अनुच्छेद 31-ग संसद को अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट सिद्धान्तों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली कोई विधि बनाने की अनुज्ञा देता है तथापि ऐसी विधि को शून्य घोषित नहीं किया जा सकता भले ही इस प्रकार की कार्यवाही अनुच्छेद 14, 19 या 31 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार का अतिक्रमण करती हो या उसका न्यूनन करती हो।

16. अनुच्छेद 31-ग के इतिहास में एक महत्वपूर्ण प्रक्रम तब आया जब संसद द्वारा संविधान का सुविदित बयालीसवां संशोधन पारित किया गया। इस संशोधन के आधार पर उन विधियों को पूर्ण अप्रतिसंहरणीय और अलंघ्य सांविधानिक संरक्षण प्रदान किया गया जिन्हें कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए ही केवल पारित नहीं किया गया है अपितु अनुच्छेद 39 के सभी खण्डों में अन्तर्विष्ट सिद्धांतों को कार्यान्वित करने के लिए पारित किया गया है। तथापि बात को साफ करते हुए तथा अनुच्छेद 31-ग के इतिहास को पूरा करते हुए हम पच्चीसवें तथा बयालीसवें संशोधन के बीच के अन्तर को संक्षेप में इस प्रकार उपवर्णित करेंगे :—

जबकि पच्चीसवें संशोधन में संविधान द्वारा दिए गए संरक्षण को अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में उल्लिखित उद्देश्यों की अभिवृद्धि करने के लिए ही केवल पारित विधियों तक निर्बन्धित किया गया, बयालीसवें संशोधन द्वारा उन निर्बन्धनों को जो कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) तक ही सीमित थे हटा दिया गया है और इस अनुच्छेद को एक अधिक व्यापक अर्थ यह विधायन करके प्रदान किया गया कि संविधान के भाग 4 में अधिकथित सिद्धान्तों में से सभी या किसी को प्रभावी करने वाले अधिनियम या विधियां अनुच्छेद 31ग में अन्तर्विष्ट उपबन्धों द्वारा संरक्षित होंगे और उन्हें इस आधार पर चुनौती नहीं जा सकेगी कि वे अनुच्छेद 14 या 19 का अतिक्रमण करते हैं।

17. इस पर भी **मिनर्वा मिल्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य**[1] में हममें से एक (मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़) ने

[1] [1981] 1 एस० सी० आर० 206, 261=[1981] 3 उम० नि० प० 146, 196.

असंशोधित अनुच्छेद 31ग पर **भारती** के मामले के विनिश्चयाधार का निर्देश करते हुए निम्नलिखित मत प्रकट किया था —

> "वस्तुतः यदि कोई ऐसा विषय है जिस पर कि केशवानन्द भारती वाले मामले में सभी तेरह न्यायाधिपतियों ने सहमति व्यक्त की थी वह इस प्रकार है: कि असंशोधित अनुच्छेद 31ग के अधीन न्यायिक पुर्नविलोकन के लिए जिस एकमात्र प्रश्न पर विचार करने की स्वतंत्रता है वह यह है कि क्या आक्षेपकृत विधि तथा अनुच्छेद 39 (ख) तथा (ग) के उपबन्धों के बीच सीधा तथा युक्तियुक्त सम्बन्ध विद्यमान है यह स्पष्ट है कि युक्तियुक्तता संबंध के बारे में है न कि विधि के बारे में।"

(रेखांकन हमारी ओर से किया गया है)

18. अतः **भारती और मिनर्वा मिल्स** के मामलों को तथा पश्चात्-वर्ती विनिश्चयों को साथ-साथ पढ़ने पर यह देखने में आएगा कि यह निर्विवाद स्थिति है कि अनुच्छेद 31ग जैसा कि वह पच्चीसवें संशोधन द्वारा पुरःस्थापित किया गया था सभी प्रकार से सांविधानिक रूप से विधिमान्य है और **भारती** के मामले में दिए गए जोरदार विनिश्चय से भी वह अप्रभावित बना रहा है।

19. इसी प्रकार के मत **वामन राव और अन्य आदि आदि** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] में, जिसमें हममें से एक (मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़) द्वारा निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया गया था —

अनुच्छेद 31 अब खतरे से बाहर है वास्तव में अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों को कार्यान्वित करने के लिए सही और सदभाविक रूप से पारित विविधां संविधान के मूल ढांचे को हानि पहुंचाने की बजाय उस ढांचे को मजबूत करेगी।

(रेखांकन हमारी ओर से किया गया है)

20. **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी** बनाम **मैं० भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य**[2] में इस न्यायालय के हाल ही के सांविधा-

---

1. [1981]2 एस० सी० आर० 1, 41=[1981] 4 उम० नि० प० 543.
2. [1983] 2 उम० नि० पा० 777, 798=[1983]1 एस० सी० 147/160.

निक पीठ विनिश्चय में इस बात पर जोर दिया गया है कि अनुच्छेद 31ग की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती नहीं दी जा सकती है और इस संबंध में हममें से एक (न्यायाधिपति रेड्डी) ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "दूसरे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 31ग की सांविधानिक विधिमान्यता का प्रश्न केशवानन्द भारती में इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है।"

21. पूर्वोक्त विनिश्चयों को देखते हुए हमारे लिए अनुच्छेद 31ग की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर और अधिक विचार करना आवश्यक नहीं है।

22. अनुच्छेद 31ग का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू जिस पर इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया है यह है कि विधानमण्डल द्वारा पारित कानून के बीच तथा अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में वर्णित दोनों उद्देश्यों के बीच निकट संबंध होना चाहिए। इस समस्या का समाधान करने के लिए तथा संबंध के प्रश्न पर विचार करने के लिए संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए क्योंकि यह सुस्थिर है कि न्यायालयों को अधिनियम की रिष्टि का दमन करने के लिए तथा उसके उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए ही सांविधानिक उपबन्ध का निर्वचन करना चाहिए। संबंध के सिद्धान्त को इतनी दूरस्थ सीमा तक नहीं खींचा जा सकता जिससे कि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) का मूल प्रयोजन ही विफल हो जाए। यह अपेक्षा करके कि विधि तथा अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के बीच संबंध होना चाहिए अभिप्राय यह है कि उक्त अनुच्छेद को लागू करने के पूर्व पारित अधिनियम और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित उद्देश्यों के बीच युक्तियुक्त संबंध होना चाहिए। यदि विधि में इस प्रकार का संबंध है तो अनुच्छेद 31 (ग) का संरक्षण पूर्ण और अप्रतिसंहरणीय बन जाता है।

23. इसके अतिरिक्त यह तथ्य कि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित प्रयोजन के बारे में अधिनियम में घोषणा की गई है सामान्यतः उस विधि और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के उद्देश्यों के बीच संबंध

1983(10) eILR(PAT) SC 2

होने का साक्ष्य हो सकता है। इस संबंध में न्यायाधिपति अय्यर ने **कर्नाटक के मामले**[1] में इस प्रकार मत व्यक्त किया था —

> "इस प्रकार अनुच्छेद 31-ग में अनुध्यात अपेक्षित घोषणा, उद्देशिका में तथा अधिनियम की धारा 2 में की गई है..... सम्पत्ति को ग्रहण करने तथा लोक प्रयोजन के बीच का संबंध आवश्यक रूप से तब अस्तित्व में आता है यदि सम्पत्ति का ग्रहण करना लोक प्रयोजन के लिए हो।"

24. "संबंध" पद में कोई विशिष्ट जादुई चमक-दमक या पारम्परिक सूत्र नहीं है जिसे कि स्पष्टतः बताया जा सके। धन के संकेंद्रण को रोकने या धन का वितरण करने के प्रयोजनार्थ बनाई गई राष्ट्रीयकरण योजना का भी, जैसा कि इस मामले में है, अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के प्रवर्तन को प्रभावी करने के लिए पर्याप्त संबंध होगा। मामले के इस पहलू पर न्यायमूर्ति अय्यर ने **कर्नाटक के मामले** में[1] आगे यह मत व्यक्त किया था —

> "अगला प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रीयकरण का वितरण से संबंध हो सकता है.....'वितरित' करने का सरल शब्दकोशीय अर्थ भी 'आबंटित करना' वर्गों में या समूहों में 'विभाजित करना' है और 'वितरण' के अन्तर्गत 'व्यवस्था, श्रेणीकरण, रखना, निपटान, प्रभाजन, मदों, मात्रा आदि को विभाजित करने या प्रभावित करने का ढंग; माल को समुदाय भर में संवितरित करने की पद्धति' आती है।"

25. **संजय कोक मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी**[2] के मामले में दिए गए पश्चात्वर्ती विनिश्चय में इसी प्रश्न पर विचार करते हुए हममें से एक (न्यायमूर्ति रेड्डी) ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था —

> "हमारी यह दृढ़ राय है कि जहां अनुच्छेद 31ग आता है वहां अनुच्छेद 14 चला जाता है। अनुच्छेद 14 में एक अप्रत्यक्ष प्रभाव अर्थात् अनुच्छेद 39 (ख) के विस्तृत समता के सिद्धान्त के साथ अनुच्छेद 14 के अधीन विधि के समक्ष समानता के

---

[1] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

[2] [1983] 2 उम० नि० प० 777, 804=[1983] 1 एस० सी० सी० 147/160.

नियम को समान मानकर या अनुच्छेद 14 के सिद्धान्त को अनुच्छेद 39 (ख) के सिद्धान्त में सम्मिलित मानकर लाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

26. अब हम सरसरी तौर पर अनुच्छेद 31ग के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का उल्लेख करेंगे जिनके बारे में हम उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों और उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलों के प्रकाश में अधिनियम के उन विभिन्न उपबन्धों पर विचार करते समय व्यापक विवेचन करेंगे। इस प्रक्रम पर यह कहना पर्याप्त है कि इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रकाश में अनुच्छेद 31ग का उचित और वास्तविक अर्थान्वयन करने पर प्रतिकर का प्रश्न पूर्ण रूप से असंगत बन जाता है। यदि एक बार विधि द्वारा अनुच्छेद 31ग में वर्णित शर्तों की पूर्ति हो जाती है तो प्रतिकर का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उक्त अनुच्छेद में न केवल अनुच्छेद 14 और 19 ही अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित हैं अपितु अनुच्छेद 31 भी, जिसमें पच्चीसवें संशोधन के आधार पर अनुच्छेद 31(2) में "प्रतिकर" शब्द के स्थान पर "रकम" शब्द प्रतिस्थापित किया गया है, अपवर्जित है। जैसा कि पहले ही उद्धृत किया जा चुका है, मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने **वामन राव के मामले**[1] में ये मत प्रकट किया था कि यदि एक बार अनुच्छेद 31ग लागू हो जाता है तो अनुच्छेद 14, 19 और 31 कोई हानि नहीं पहुंचा सकते।

27. इस प्रश्न के कि क्या ऐसे मामले में जहां अनुच्छेद 31ग लागू होता है प्रतिकर देना आवश्यक है, निम्नलिखित पहलू हैं—

(क) यदि अनुच्छेद 31ग के बारे में यह समझा जाता है, जैसा कि उसके बारे में समझा जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 31(2) का वर्जन करता है, तो प्रतिकर का प्रश्न असंगत और निराधार बन जाता है।

(ख) राज्य द्वारा परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण आक्षेप और अपवाद योग्य नहीं है और इसे तीन भिन्न ढंगों से किया जा सकता है—

(i) सेवाओं का राष्ट्रीयकरण, न कि उसके एककों का राष्ट्रीयकरण,

---
[1] [1981] 4 उम० नि० प० 543.

1983(10) eILR(PAT) SC 26

(ii) एककों की सम्पूर्ण आस्तियों सहित सेवाओं का राष्ट्रीयकरण, और

(iii) सेवाओं का तथा प्रचालकों के एककों की आस्तियों के भाग का राष्ट्रीयकरण ।

28. प्रस्तुत मामले में तमिलनाडु राज्य ने उपरोक्त ढंग (iii) को अपनाया है अर्थात् उसने सम्पूर्ण परिवहन सेवा तथा उसके एककों को सम्पूर्ण आस्तियों के एक भाग का राष्ट्रीयकरण किया है । यह स्पष्ट है कि चूंकि राष्ट्रीयकरण एक नीति विषयक विनिश्चय है अतः विधान-मण्डल की नीति या उसको शासित करने वाले विचारों की जांच न्यायालयों द्वारा तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि वह नीति इतनी अनुचित न हो कि वह संविधान के उपबन्धों का अतिक्रमण करती हो । अनुच्छेद 31ग को देखते हुए, जो कि अनुच्छेद 31(2) के विरुद्ध भी संरक्षण प्रदान करता है, न्यायालय अधिनियम को मात्र इस कारण अभिखण्डित नहीं कर सकते कि परिवहन सेवाओं या उसके एककों को अपने अधीन लेने के सम्बन्ध में दिए जाने वाले प्रतिकर की बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है । इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 31ग समाजवाद के सम्बन्ध में एक पुरातनवादी दृष्टिकोण ही नहीं है अपितु उसमें एक सैद्धान्तिक पहलू भी है जिस द्वारा उत्पादन के सभी साधन, प्रमुख उद्योग, व्यापार, बैंक, लोक प्रदाय, आवश्यक वस्तुएं और सेवाएं धीरे-धीरे लोक स्वामित्व, प्रबन्ध और नियंत्रण के अधीन ली जा सकती हैं ।

29. 1963 में **एकादशी पधान** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] में न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर ने संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित मत प्रकट किया था ---

> "युक्तिमान व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीयकरण या राज्य का स्वामित्व समीचीनता का विषय है जिसमें आर्थिक दक्षता तथा परिवर्धित उत्पादन के विचारों की प्रधानता है....... ।

---

[1] [1963] सप्ली० (2) एस० सी० आर० 691.

विधानमण्डल द्वारा अनुच्छेद 19(6) में किया गया संशोधन दर्शित करता है कि विधानमण्डल के अनुसार राज्य एकाधिकार का सृजन करने वाली विधि के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह जनसाधारण के हित में है। अनुच्छेद 19(6)(ii) से स्पष्टतः दर्शित होता है कि राज्य एकाधिकार के सृजन के सम्बन्ध में राज्य की शक्ति पर कोई निर्बन्धन नहीं है.......... । हमारी राय में यह संशोधन स्पष्ट रूप से उपदर्शित करता है कि किसी व्यापार या कारबार के सम्बन्ध में राज्य एकाधिकार को, जहां तक अनुच्छेद 19(1)(छ) का संबंध है, युक्तियुक्त और जनसाधारण के हितों मे मानना चाहिए।"

30. अतः 1963 में ही सामाजिक समस्याओं के प्रति उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण में हुए परिवर्तन को बहुत गंभीरता से महसूस किया जाने लगा था, यहां तक कि आस्तियों के राष्ट्रीयकरण या राज्य एकाधिकार की किसी नीति के बारे में, समानता के आधार पर समाज के निर्माण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, उसे इतना आवश्यक समझा जाता था कि अनुच्छेद 19(1)(छ) में अन्तर्विष्ट निर्बन्धनों को युक्तियुक्त समझा जाने लगा। दूसरे शब्दों में यद्यपि अनुच्छेद 31ग न होता तो भी इस विनिश्चय के आधार पर परिवहन सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की नीति को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जा सकता था और वह युक्तियुक्त निर्बन्धन होने के कारण अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण नहीं करेगी। अनुच्छेद 31ग को, जिसे कि उपरोक्त विनिश्चय के लगभग एक दशक पश्चात् शामिल किया गया था, मूल भावना का स्पष्ट रूप से पहले से ही अनुमान लगाया गया था तथा **एकादशी पधान के मामले**[1] में (पूर्वोक्त) स्वीकार किया गया था और एक प्रकार से इस न्यायालय ने एक और सामाजिक सुधार का रास्ता खोल दिया था, ऐसा सामाजिक सुधार जो संविधान के महत्वपूर्ण निदेशक सिद्धान्तों की प्राप्ति में आने वाली किसी बाधा को नष्ट कर देगा। इससे ज्यादा हम इस विनिश्चय के बारे में और कुछ कहना नहीं चाहेंगे क्योंकि अनुच्छेद 14, 19 और 31 पूर्ण रूप से अनुच्छेद 31ग

1 [1963] सप्लि० (3) एस० सी० आर० 691.

द्वारा अपवर्जित हैं । अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में दिए गए उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बनाई गई विधियों को विधिमान्य करने वाले ये उपबन्ध एक साधारण से प्रारम्भ का अन्तिम और निश्चायक अध्याय के रूप में है जिस में न्यायालयों से अपील की गई है कि ऐसे मामलों के सम्बन्ध में वे एक सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाएं ।

31. श्री रे ने यह सही तौर पर बहस की है कि अनुच्छेद 31ग के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए यह अधिनियम उक्त अनुच्छेद के संरक्षण के भीतर पूर्ण रूप से आता है क्योंकि तत्व और सार के अनुसार यह अधिनियम अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों को पूरा करना तथा उन्हें प्राप्त करना चाहता है और इसलिए वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 का अतिक्रमण करने के विरुद्ध पूर्णतः संरक्षित है । श्री रे की इस दलील का विरोध करते हुए सर्वश्री अशोक सेन, वेनुगोपाल और सांधी ने दो तरफा दलीलें दी हैं। प्रथमतः यह दलील दी गई है कि जिस रीति में अधिनियम के अधीन परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण किया गया है वह अनुच्छेद 39(ख) और (ग) की परिधि के भीतर नहीं आता है क्योंकि ये बसें तथा ये मोटरयान राष्ट्रीयकरण की नीति का अभिन्न भाग नहीं थे । दूसरे श्री वेनुगोपाल ने दलील दी है कि यदि अधिनियम एककों तथा कर्मशालाओं आदि को अपने अधीन ग्रहण किए बिना परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करता तो प्रचालक (आपरेटर्स) के पास अपने जीवन निर्वाह के लिए कुछ कमाने का साधन बच पाएगा । अधिनियम द्वारा जीवन निर्वाह से पूर्णतया वंचित किया जाना उसे समपहरण करने वाले विधान की कोटि में लाता है और इसलिए वह शून्य है। यद्यपि ये दलीलें आकर्षक प्रतीत होती हैं तथापि निकटता से समीक्षा करने पर वे सारहीन प्रतीत होती हैं । यदि एक बार यह मान लिया जाता है कि परिवहन सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की नीति विधिमान्य है, जोकि निःसंदेह आवश्यक सेवा है और जिस पर एक प्रकार से राज्य को एकाधिकार है, अतः ऐसा करने से उसका यदि कोई भी परिणाम निकलता है तो उस पर विचार नहीं किया जा सकता । यदि ऐसा नहीं किया गया तो कभी भी किसी प्रकार का कोई सामाजिक सुधार नहीं किया जा सकेगा । एकाधिकार या

राष्ट्रीयकरण को सभी स्कीमें जनसाधारण के फायदे के लिए होती हैं और ऐसे मामलों में व्यक्तिगत हितों को जनसाधारण के लाभों के सामने झुकना होगा। इसके अतिरिक्त दलीलों की निकटता से परीक्षा करने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वे पूर्णतः चलने योग्य नहीं हैं। अधिनियम के विभिन्न उपबन्ध स्पष्ट रूप से न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रतिकर देने का, जो कि ग्रहण किए गए यूनिटों के बाजार मूल्य के समतुल्य नहीं होंगे, उपबन्ध करते हैं और उन्हें भ्रामक या न्यायालय के अन्तःकरण को धक्का पहुंचाने वाला नहीं कहा जा सकता।

32. यद्यपि हमने यह देखा है कि अनुच्छेद 31 के अपवर्जित हो जाने से प्रतिकर का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है, फिर भी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालयों ने सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण की नीति का निर्वचन करते समय और न्याय तथा ऋजुता के सिद्धान्त की दृ भावना से प्रेरित होकर बहुत ही सीमित अर्थ में प्रतिकर के प्रश्न को यह अभिनिर्धारित करते हुए पेश किया है कि "रकम" शब्द से केवल किसी प्रकार की युक्तियुक्त रकम अभिप्रेत है जो कि परिस्थितियों में समुचित हो अथवा न हो। हम समझते हैं कि अनुच्छेद 31ग के स्पष्ट और अभिव्यक्त उपबन्धों को देखते हुए प्रतिकर का प्रश्न बिल्कुल भी पैदा नहीं होता है और यदि वह पैदा भी होता है तो यह विषय **कर्नाटक वाले मामले**[1] में इस न्यायालय के 7 न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है।

33. अनुच्छेद 31ग के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् अब हम इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि तथा हमारे द्वारा निकाले गए पूर्वोक्त निष्कर्षों के प्रकाश में इस अधिनियम के उपबन्धों की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होते हैं। प्रारम्भ में, इस अधिनियम में एक सविस्तार प्रस्तावना दी गई है जिसमें अधिनियम के आशय और उद्देश्यों का वर्णन है। हम यह उल्लेख कर दें कि प्रस्तावना के प्रथम पैरा में अनुच्छेद 39 के खण्ड (ग) का अध्यादेश में उल्लेख नहीं था

[1] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

किन्तु जब यह अध्यादेश अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया तो अनुच्छेद 39 के खण्ड (ग) को अन्तःस्थापित किया गया। प्रस्तावना के विभिन्न खण्डों की समीक्षा करने से यह प्रकट होता है कि यह विधान शुद्धतः प्रगतिशील विधान है जिसका आशय मंजिली गाड़ी प्रचालकों की सम्पत्ति का समपहरण करने या उनके कारबार को नष्ट करना नहीं था अपितु विभिन्न राजस्व जिलों में भिन्न-भिन्न प्रक्रमों पर राज्य परिवहन सेवाओं के सम्पूर्ण नियंत्रण को अपने हाथ में लेना था।

34. जैसा कि इससे पहले उपदर्शित किया गया है, इस अधिनियम के पूर्व अध्यादेश जारी किया गया था जिसमें समरूप उपबन्ध थे और जो 12 जनवरी, 1973 को जारी किया गया था। इस अध्यादेश की सांविधानिक विधिमान्यता को मद्रास उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी और जबकि उच्च न्यायालय का निर्णय लम्बित था यह अध्यादेश 14 मार्च, 1973 को अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। उच्च न्यायालय ने अध्यादेश को असांविधानिक होने के आधार पर अभिखण्डित कर दिया और एक अन्तरिम आदेश पारित किया गया जिस द्वारा अधिनियम के सभी उपबन्धों पर, इस न्यायालय में अपील के लम्बित रहने तक, रोक लगा दी। जून, 1973 में किसी समय इस न्यायालय द्वारा एक अन्तरिम आदेश पारित किया गया जिस द्वारा उन परिवहन यानों को, जिन्हें राज्य द्वारा ग्रहण नहीं किया गया था, ग्रहण करने से रोक लगा दी गई।

35. अब अधिनियम के उपबन्धों पर विचार करते हुए यह देखने में आएगा कि जहां तक धारा 1 का संबंध है यह न्यूनाधिक रूप से वर्णनात्मक है, केवल यह अन्तर है कि जहां तक नीलगिरि जिले का संबंध है, इस उपबन्ध में कहा गया है कि राष्ट्रीकरण की नीति 14 जनवरी, 1973 से प्रवृत्त की जाएगी। दूसरे शब्दों में अधिनियम का आशय राष्ट्रीयकरण की स्कीम को पहले नीलगिरि जिले से प्रारम्भ करने का है और तत्पश्चात उसका विस्तार अन्य जिलों में, जैसे-जैसे वहां वह आवश्यक हो, करने का है। धारा 1 के उपखण्ड (4) (ख) के खण्ड (iii) में अधिकथित है कि राज्य में किसी अन्य जिले में मंजिली गाड़ी के सम्बन्ध में अधिनियम उस तारीख से प्रवृत्त होगा जो कि सरकार अधिसूचना द्वारा नियत करे। धारा 2 प्रस्तावना के एक खण्ड को यह

घोषणा अधिनियमित करते हुए संहितावद्ध करती है कि यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों की प्राप्ति के लिए और धारा 4 में निर्दिष्ट मंजिली गाड़ी और ठेका गाड़ियों तथा अन्य सम्पत्तियों के अर्जन के लिए राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए अभिप्रेत है। अधिनियम के पारित होने के पश्चात् **केशवानन्द भारती**[1] के मामले में दिए गए विनिश्चय के आधार पर नीति निदेशक सिद्धान्तों की विधिक प्रास्थिति या स्थिति जो भी रही हो, जहां तक कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) का संबंध है उन्हें सांविधानिक अभिनिर्धारित किया गया और इन सिद्धान्तों को प्रवृत्त करने के लिए पारित कोई अधिनियम स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 31ग के संरक्षण के अधीन माना गया है और इस प्रकार उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। हमने इससे पहले इस पहलू पर विचार कर लिया है।

36. धारा 2 को उप-धारा 2(ए) में उपबन्धित है कि मंजिली गाड़ी का अर्जन उन जिलों से प्रारम्भ होगा जहां अपेक्षाकृत कम संख्या में मंजिली गाड़ियां चलाई जा रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उपबन्ध बस प्रचालकों को कम से कम असुविधा पहुंचाने की दृष्टि से शामिल किया गया है जिससे कि उन अन्य जिलों के प्रचालक, जहां स्कीम का राष्ट्रीयकरण प्रवर्तित नहीं किया गया है, उस दशा में सम्यक तैयारियां कर लें और आनुकल्पिक व्यवस्था कर लें यदि सम्बन्धित जिलों को भी अधिनियम के अधीन समय-समय पर जारी की गई अधिसूचनाओं के आधार पर राष्ट्रीयकरण स्कीम में शामिल कर लिया जाता है।

37. धारा 3 में अधिनियम में प्रयुक्त विभिन्न अभिव्यक्तियों की परिभाषाएं दी गई हैं और इस समय हमारे लिए इस धारा के खण्ड (ए) से (एप) का सविस्तार वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

38. धारा 4, जो कि प्रमुख धारा है, में उपबन्धित है कि उस तारीख को और से, जो कि सरकार द्वारा किसी मंजिली गाड़ी या ठेका-गाड़ी प्रचालक के संबंध में विनिर्दिष्ट की जाए, प्रचालक को जारी किया गया परमिट सभी विल्लंगमों से मुक्त पूर्ण रूप से सरकार में निहित होगा और ऐसी गाड़ियां या ठेका गाड़ियां, जो सरकार में निहित हैं, ऐसे निहित

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=1973 सप्ली० एस० सी० आर० 1,

होने के बल पर किसी न्यास, बाध्यता या विल्लंगम आदि से मुक्त और उन्मोचित हो जाएंगी। दूसरे शब्दों में अधिनियम का आशय यह था कि राज्य परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करते समय राज्य अपने ऊपर उन दायित्वों का बोझ न डाल ले जो अधिनियम के प्रवर्तन के पूर्व बस प्रचालकों द्वारा उपगत किए गए हों जिससे कि राष्ट्रीयकरण की नीति सुगमता के साथ तथा बिना किसी बाधा या रुकावट के चल सके। इसके साथ ही साथ धारा 4 में यह भी उपबन्धित है कि कोई भी हित-बद्ध व्यक्ति ऐसी गाड़ियों या ठेका गाड़ियों के संबंध में कोई दावा नहीं कर सकेगा जिन्हें कि पूर्वोक्त राष्ट्रीयकरण नीति के अनुसरण में राज्य द्वारा ग्रहण किया गया है और यदि कोई दावा किया जाता है तो वह केवल ऐसी रकम तक सीमित रहेगा जो कि अधिनियम के अधीन यथा उपबन्धित ऐसी मंजिली गाड़ी या ठेका गाड़ियों के संबंध में संदेय है। धारा 4 की उप-धारा (2) में एक महत्वपूर्ण संरक्षण अधिकथित है कि मंजिली गाड़ी के प्रचालकों या ठेका गाड़ी के प्रचालकों के सभी अधिकार, हक और हित जिसके अन्तर्गत भूमि, भवन, कर्मशाला तथा अन्य स्थान, भण्डार लिखतें, मशीनरी, औजार, संयंत्र तथा अन्य उपकरण, जिनका प्रयोग इन गाड़ियों की देखभाल में किया जाता है, राज्य में निहित होंगे।

39. इस उपबन्ध के बारे में गंभीर विवाद था और प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल द्वारा इसको इस आधार पर बलपूर्वक चुनौती दी गई थी कि यह अधिनियम का एक बहुत ही कठोर और सख्त उप-बन्ध है जो कि न केवल प्रचालकों के मूल अधिकार का नाश करता है अपितु अनुच्छेद 14 के अधीन समता के अधिकार को भी छीन लेता है। भले ही अनुच्छेद 14 या 19 लागू होते हों, मशीनरी, औजार आदि का, जो कि प्रचालकों के कारबार को चलाने के लिए उनकी निजी सम्पत्ति हैं, निहित होना समपहरण की प्रकृति के विधान की कोटि में आएगा। हम मामले के इस पहलू पर उस समय विचार करेंगे जब हम दोनों पक्षकारों की ओर से काउन्सेल द्वारा हमारे समक्ष दी गई विभिन्न दलीलों पर विचार करेंगे। इस प्रक्रम पर यह टिप्पणी करना पर्याप्त

होगा कि लेखा पुस्तकें, रजिस्टर इत्यादि तक भी अधिसूचना के जारी होने पर सरकार् में निहित होंगे तथा सभी भाड़ा-क्रय करार और संव्यवहार आदि के बारे में यह समझा जाएगा कि वे वापस ले लिए गए हैं। इस उपबंध को अधिनियमित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब सरकार परिवहन सेवाओं या उसके एककों का राष्ट्रीयकरण करने का विनिश्चय करती है तो कारबार के सभी साधन सरकार में निहित होने चाहिएं जिससे कि निहित होने के पश्चात् सरकार प्रचालकों द्वारा की गई संविदाओं या वचनबंध द्वारा अपने को आबद्ध महसूस न करे जिससे कि उसकी नीति का हनन हो और जिसके परिणामस्वरूप स्वयं राष्ट्रीयकरण की स्कीम में बाधाएं पैदा हो जाएं।

40. धारा 4 की उप-धारा (3) में एक यह घोषणा अन्तर्विष्ट है कि मंजिली गाड़ियों तथा अन्य सम्पत्तियों के निहित होने की बाबत यह समझा जाएगा कि उन्हें लोक प्रयोजन के लिए अर्जित किया गया है अर्थात प्रचालकों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाली न केवल मंजिली गाड़ियों या ठेका गाड़ियों का ही अर्जन अपितु उनके औजारों, उपक्रमों तथा कर्मशालाओं का अर्जन भी, ऐसी विभिन्न जंगम सम्पत्तियों के जो अधिनियम के उपबन्धों के आधार पर सरकार में निहित होती हैं, विरुद्ध किए जाने वाले विधिक या सांविधानिक आक्षेपों के निवारण के लिए, लोक हित में होगा।

41. धारा 5 में नैमिक प्रकृति के उपबन्ध हैं जो कि लेखाओं के प्रस्तुत करने, करार, सरकारी अधिकारियों द्वारा निरीक्षण, आंकड़े देने तथा इसी प्रकार के ब्योरों की बाबत हैं। अधिनियम का एक अन्य महत्वपूर्ण उपबन्ध धारा 6 है जिसमें उपबन्धित है कि सरकार प्रचालकों की सम्पत्तियों के निहित होने पर प्रचालकों को प्रतिकर की युक्तियुक्त रकम दी जाएगी। धारा 6 की उपधारा (1) में कहा गया है कि प्रत्येक हितबद्ध व्यक्ति ऐसी रकम प्राप्त करने का हकदार होगा जैसी कि अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में अवधारित की जाए अर्थात् जब ऐसी रकम सहमति से नियत की जा सकती हो तो उसे सहमति के अनुसार अवधारित किया जाएगा। दूसरे जहां कि किसी प्रकार की कोई सहमति नहीं हो पाती है वहां सरकार ऐसे व्यक्ति को मध्यस्थ नियुक्त करेगी जो जिला न्यायाधीश हो या रहा हो या जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति का पात्र हो। मध्यस्थ की नियुक्ति करते समय सरकार

यदि आवश्यक हो तो एक ऐसे व्यक्ति को मध्यस्थ की सहायता करने के लिए नामनिर्दिष्ट करेगा जिसे अर्जित सम्पत्ति की प्रकृति के बारे में विशेष जानकारी हो। ये दोनों उपबन्ध स्पष्ट रूप से सरकार में प्रचालकों की सम्पत्ति निहित होने पर प्रचालकों के प्रति ऋजुता का दृष्टिकोण अधिनियम में दर्शित करते हैं। धारा 6 की उपधारा (1) के खण्ड (ई) में उपबंधित है कि मध्यस्थ संबंधित पक्षकारों तथा विवाद की सुनवाई करने के पश्चात् वह रकम अवधारित करेगा जो उसे न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रतीत होती है और उस व्यक्ति तथा उन व्यक्तियों को भी विनिर्दिष्ट करेगा जो पूर्वोक्त प्रतिकर के हकदार होंगे। धारा 6 के खण्ड 1 (एफ) में उपबन्धित है कि जब रकम के वितरण के संबंध में हक संबंधी कोई विवाद हो तो वह रकम मध्यस्थ द्वारा संबंधित व्यक्तियों के बीच बांट दी जाएगी। साथ ही साथ माध्यस्थम् की प्रक्रिया के दौरान किसी अन्य विवाद से बचने के लिए धारा 6 की उप-धारा (1) के खण्ड (जी) में उपबन्धित है कि माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का केन्द्रीय अधिनियम 10) के उपबन्ध धारा 6 के अधीन किए जा रहे माध्यस्थमों को लागू नहीं होंगे।

42. धारा 7 और 8 में दावों को फाइल करने तथा उनसे सबंधित शर्तों के लिए आम प्रक्रिया दी गई है। यह उल्लेखनीय है कि मध्यस्थ का अधिनिर्णय अन्तिम नहीं है अपितु उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

43. धारा 12 में स्पष्ट रूप से उपवन्धित है कि अधिनिर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसे अधिनिर्णय की तारीख से तीस दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है। तथापि परन्तुक में उच्च न्ययालय को ऐसे समुचित मामलों में विलम्ब को माफ करने की शक्ति दी गई है जहां विहित समय के भीतर अपील फाइल करने से दावेदार को रोकने की बाबत पर्याप्त हेतुक साबित किया गया हो।

44. अन्य उपबन्धों का उल्लेख करने के पूर्व हम अनुसूची के प्रति निर्देश करना चाहेंगे जिसमें प्रतिकर के मापमान को नियत किया गया है और उन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया गया है जिनके आधार पर

उन प्रचालकों को प्रतिकर दिया जाएगा जिनकी मंजिली गाड़ियां या ठेका गाड़ियां सरकार द्वारा ली गई हैं। प्रतिकर के संदाय का मार्गदर्शन करने वाली सारणी नीचे उद्धृत है —

सारणी

अवधि	प्रतिशत
1. अधिसूचित तारीख के पूर्व छह मास से अनधिक	85
2. अधिसूचित तारीख के पूर्व छह मास से अधिक किन्तु एक वर्ष से अनधिक	75
3. एक वर्ष से अधिक किन्तु दो वर्ष से अनधिक	70
4. दो वर्ष से अधिक किन्तु तीन वर्ष से अनधिक	68
5. तीन वर्ष से अधिक किन्तु चार वर्ष से अनधिक	67
6. चार वर्ष से अधिक किन्तु पांच वर्ष से अनधिक	66-2/3
7. पांच वर्ष से अधिक किन्तु छह वर्ष से अनधिक	59
8. छह वर्ष से अधिक किन्तु सात वर्ष से अनधिक	41
9. सात वर्ष से अधिक किन्तु आठ वर्ष से अनधिक	29
10. आठ वर्ष से अधिक किन्तु नौ वर्ष से अनधिक	21
11. नौ वर्ष से अधिक किन्तु दस वर्ष से अनधिक	14
12. दस वर्ष से अधिक किन्तु ग्यारह वर्ष से अनधिक	10
13. ग्यारह वर्ष से अधिक किन्तु बारह वर्ष से अनधिक	7
14. बारह वर्ष से अधिक किन्तु तेरह वर्ष से अनधिक	5
15. तेरह वर्ष से अधिक	4

45. इन मार्गदर्शनों की संवीक्षा से यह देखने में आएगा कि अधिक प्रतिकर का उपबन्ध स्पष्ट रूप से इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि यदि बाजार भाव पर प्रतिकर दिया जाता है तो राज्य कोष पर भारी बोझ पड़ेगा जिसे कि पूर्ण वित्तीय गड़बड़ी पैदा हो सकती है और इस प्रकार राष्ट्रीयकरण की मूल नीति विफल हो जाएगी। हम यहां यह उल्लेख कर दें कि प्रत्यर्थियों ने दलील दी थी कि प्रतिकर की दरें पूर्ण रूप से अपर्याप्त और बिल्कुल भ्रामक हैं क्योंकि मध्यस्थ या उच्च न्यायालय प्रतिकर का निर्धारण करते समय द्वितीय अनुसूची के बाहर कुछ नहीं कर सकते। अपीलार्थी-राज्य की ओर से उपस्थित श्री एस०एस०

रे ने उचित रूप से स्वीकार किया है कि यह अनुसूची मात्र एक प्रकार का मार्गदर्शन है जो कि प्रतिकर को मात्रा का अवधारण करने के संबंध में स्वतः पूर्ण नहीं है और इसको राज्य की ओर से एक प्रकार की रियायत समझना चाहिए कि प्रतिकर नियत करने वाले अधिकारी अधिनियम में अधिकथित प्रतिकर के सिद्धांतों में मामूली तौर पर विचलन कर सकते हैं किन्तु महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तन नहीं हो सकते। मोटे तौर पर प्रतिकर का उपबन्ध करने तथा उसका विनिश्चय राज्य के उच्चतम न्यायालय अर्थात उच्च न्यायालय द्वारा करने की अनुज्ञा देने का प्रश्नगत कानून का यही वास्तविक आशय है। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि उपबन्धित प्रतिकर पूर्ण रूप से भ्रामक या न्यायालय के अन्तःकरण को दहलाने वाला है जो कि अनुच्छेद 31(2) की एकमात्र अपेक्षा है।

46. इसके अतिरिक्त धारा 11 में अन्य नैमिक उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं जिनमें वह रीति उपबन्धित है जिसमें कि प्रतिकर प्राधिकारियों द्वारा न्यायनिर्णीत रकम का संदाय किया जाना है। खण्ड 1 (ए) उक्त रकम पर 6-1/2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज देने का उपबन्ध भी करती है तथा प्रचालकों को कतिपय अन्य विकल्प भी दिए गए हैं।

47. धारा 13 में माध्यस्थम् कार्यवाहियों में अपनाई जाने वाली विधिक प्रक्रिया उपबन्धित है और उस प्रयोजन के लिए मध्यस्थ को सिविल न्यायालय की वे सभी शक्तियां प्राप्त होंगी जो कि सिविल न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन वाद का विचारण करते समय होती हैं। धारा 13 साक्षियों को आहूत करने तथा उनकी उपस्थिति प्रवर्तित कराने के लिए, दस्तावेजों को खोजने तथा पेश करने की अपेक्षा करने के लिए, शपथपत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करने के लिए, किसी न्यायालय या कार्यालय से लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करने के लिए तथा साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा करने के लिए कमीशन जारी करने के लिए इस प्रक्रिया को लागू करती है।

48. तथापि धारा 14 राज्य द्वारा मंजिली गाड़ियों या ठेका गाड़ियों के अर्जन के पश्चात् वर्तमान परमिट के नवीकरण अथवा किसी नए परमिट के लिए आवेदन करने के बारे में मंजिली गाड़ियों या ठेका

गाड़ियों के अर्जन की बाबत एक अपवाद सृष्ट करती है। इसमें यह भी उपबन्धित है कि 14 जनवरी, 1973 के पूर्व, जो कि अधिनियम के प्रवर्तन की तारीख है, नए परमिट के अनुदान अथवा वर्तमान परमिट के नवीकरण के लिए प्रत्येक आवेदन दायर की गई उससे संबंधित कोई अपील या पुनरीक्षण जो कि किसी न्यायालय या किसी अधिकारी या प्राधिकारी अथवा अधिकरण के समक्ष लम्बित हो, का उपशमन हो जाएगा। भविष्य में निरन्तर होने वाले विवादों को रोकने के लिए हमें यह उपबन्ध बहुत उपयोगी प्रतीत होता है।

49. धारा 15 में उपबन्धित है कि 14 जनवरी, 1973 को या उसके पश्चात् तथा अधिसूचित तारीख के पूर्व मंजिली या ठेका गाड़ियों के अन्तरण प्रतिषिद्ध हैं। इसमें आगे उपबंधित है कि कोई भी व्यक्ति पूर्वोक्त तारीख के पश्चात् विक्रय या दान के रूप में किसी एसी मंजिली या ठेका गाड़ी का अन्तरण नहीं करेगा जो कि अधिनियम के अधीन अर्जित किए जाने के दायित्वाधीन है।

50. धारा 16 प्रचालकों को अस्थायी परमिट देने का तथा उन परिस्थितियों का जिनके अधीन और उस अवधि का जिसके लिए उनका विस्तार या अन्तरण किया जा सकता है, उपबन्ध करती है और इस महत्वपूर्ण धारा के परिणामस्वरूप उसमें यह उपबन्धित है कि कोई भी मंजिली या ठेका गाड़ी प्रचालक किसी क्षेत्र या ऐसे मार्ग के संबंध में जिसे अधिनियम में अधिसूचित किया गया है कोई अस्थायी परमिट अभिप्राप्त नहीं कर सकेगा।

51. धारा 17 किसी मंजिली या ठेका गाड़ी का अन्तरण प्रतिषिद्ध करती है और व्यादिष्ट करती है कि यदि कोई अन्तरण किया जाता है तो वह शून्य होगा और उसे सरकार द्वारा अर्जित किया जा सकेगा। धारा 18 अर्जित सम्पत्ति को ग्रहण करने की व्यवस्था करने के लिए तथा प्रशासकों को समनुदिष्ट कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रशासकों की नियुक्ति का उपबन्ध करती है। धारा 19 में भी प्राधिकृत अधिकारियों की नियुक्ति के लिए समरूप उपबन्ध किया गया है। धारा 20 भी एक महत्वपूर्ण उपबन्ध है जिसे प्रचालकों के वर्तमान कर्मचारिवृन्द की संरक्षा करने के प्रयोजनार्थ, जिससे कि उन्हें सरकार के राज्य परिवहन

1983(10) eILR(PAT) SC 26

विभाग में किसी वेतनमान पर अथवा सरकार के स्वामित्वाधीन किसी निगम या कम्पनी में लगा लिया जाए और इस प्रयोजन के लिए इस धारा में अनेक बातों का उल्लेख है।

52. धारा 21 राष्ट्रीयकरण की नीति के फलस्वरूप होने वाले परिणामों का उल्लेख करती है और उस रीति को विहित करती है जिसमें नवीन रूप से अर्जित मंजिली या ठेका गाड़ियां निगम या कम्पनी या सरकार के राज्य परिवहन विभाग द्वारा, जिसे कि अर्जित सम्पत्ति अन्तरित की जाती है, चलाई जाएंगी।

53. धारा 25 भी एक प्रकार का नैमिक उपबन्ध है जिसमें आदेश, नोटिस जारी करने तथा उन्हें देने आदि के उपबन्ध किए गए हैं। धारा 26 एक महत्वपूर्ण धारा है जो कि अधिनियम के प्रवर्तन से विशेष प्रकार की मंजिली या ठेका गाड़ियों को, जैसे कि केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार, या केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित या स्वामित्वाधीन किसी कम्पनी द्वारा धारित मंजिली या ठेका गाड़ियां अधिनियम से छूट प्रदान करती है। धारा 27 एक भ्रामक धारा है जो कि ऐसे व्यक्तियों को उन्मुक्ति प्रदान करती है जो अधिनियम के अनुसरण में सद्भावपूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। धारा 28 कतिपय मामलों में सिविल न्यायालयों की अधिकारिता का वर्जन करती है। धारा 29 एक दाण्डिक उपबन्ध है जो अधिनियम के उपबन्धों के अतिक्रमण में किए गए अपराधों के लिए दण्ड का उपबन्ध करती है। धारा 30 कतिपय अधिकारियों में, जैसे कि प्रशासक, मध्यस्थ, प्राधिकृत अधिकारी आदि, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोकसेवक की प्रास्थिति विनिहित करती है। धारा 31 व्यावृत्ति उपबन्ध है जो कि अधिनियम के पारित होने पर अन्य विधियों पर अभिभावी होता है। धारा 32 अधिनियम के प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए सरकार को दी गई नियम बनाने की शक्ति का उपबन्ध करती है।

54. अधिनियम को अभिखण्डित करने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करने के पूर्व हम अपीलार्थी की ओर से हमारे समक्ष दी गई एक महत्वपूर्ण दलील का निपटारा कर दें जो कि इस बारे में है कि इस अधिनियम के उपबन्ध लगभग कर्नाटक अधि-नियम के समविषयक हैं। कर्नाटक अधिनियम के बारे में इस न्यायालय

को संविधान पीठ द्वारा विनिश्चय किया गया था जिस द्वारा कर्नाटक अधिनियम को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था। पूर्वोक्त विनिश्चय के आधार पर यह दलील दी गई कि इस विषय पर इस न्यायालय के 7 न्यायाधीश के न्यायपीठ द्वारा विनिश्चय दिया जा चुका है और यह अपील केवल इस आधार पर ही मंजूर की जानी चाहिए। दूसरी ओर प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी को इस दलील के सही होने को चुनौती दी है और दलील दी है कि दोनों अधिनियमों के बीच अत्यधिक अन्तर है। तथापि हम एतद्द्वारा दिए गए कारणों से इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

55. मुख्यतः दोनों अधिनियमों के उपबन्ध बहुत सी बातों में समरूप प्रतीत होते हैं तथा दोनों अधिनियमों के आधारभूत तत्व और साधारण संरचना भी लगभग एक जैसी है। दोनों अधिनियमों की मूल बातें संक्षेप में निम्नलिखित रूप में हैं—

(क) दोनों अधिनियमों का उद्देश्य परिवहन सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की नीति है। (कर्नाटक अधिनियम में केवल मंजिली गाड़ियों की बाबत उपबन्ध था किन्तु इस अधिनियम की परिधि में ठेका गाड़ियां भी हैं),

(ख) दोनों अधिनियमों में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उद्देश्यों को प्राप्त करना है,

(ग) दोनों अधिनियमों में ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहा गया है कि यह स्वयं सरकार द्वारा अपनाई गई राष्ट्रीय नीति होने से ऐसा करना निःसन्देह लोकहित में होगा,

(घ) भौतिक सम्पदा के वितरण की प्रक्रिया तथा ग्रहण किए गए एकक लगभग वैसे ही हैं,

(ङ) न्यूनाधिक रूप में राष्ट्रीयकरण नीति की परिधि और विस्तार क्षेत्र, तथा उसको विरचित करने की रीति और ढंग एक जैसा ही है, और

(च) दोनों अधिनियमों में प्रतिकर के सिद्धांत तथा प्रतिकर को अवधारित करने के लिए उपबन्धित तंत्र बिलकुल समरूप हैं, कुछ मामूली सा अन्तर कहीं-कहीं है।

56. अतः इस न्यायालय के समक्ष कर्नाटक अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता के बारे में दी गई सभी दलीलें वर्तमान अधिनियम के संबंध में समान रूप से और पूर्णतः लागू होती हैं तथा कर्नाटक के मामले में इस न्यायालय के स्पष्ट विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए जहां तक कि इस मामले में प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलीलों का संबंध है, बहुत ही कम बचता है। दूसरी ओर इस न्यायालय के तीन महत्वपूर्ण विनिश्चय अर्थात **मिनर्वा मिल्स**[1] । **वामन राव**[2] और **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी**[3] के मामले, जो कि **कर्नाटक**[4] के मामले के पश्चात् दिए गए थे, इस न्यायालय द्वारा **कर्नाटक**[4] के मामले में दिए गए निष्कर्ष को बल प्रदान करते हैं और उसकी पुनरावृत्ति करते हैं।

57. उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों की परीक्षा करने के पूर्व हम कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करेंगे जो कि तमिलनाडु विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम के पश्चात् और उच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् अस्तित्व में आए हैं। ये तीन शीर्षों के अधीन हैं —

(1) यह कि संविधान (25वां संशोधन) अधिनियम, 1971 के आधार पर अनुच्छेद 31ग के रूप में एक नया अनुच्छेद संविधान में अन्तःस्थापित किया गया है जिसका मूल उद्देश्य संविधान के भाग 4 में अन्तर्विष्ट कुछ महत्वपूर्ण नीति निदेशक सिद्धांतों की महत्ता को उजागर करना है। अनुच्छेद 31ग में उपबन्धित है कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों की प्राप्ति के लिए किसी विधानमण्डल द्वारा बनाई गई कोई विधि इस आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 में अन्तर्विष्ट अधिकारों में से किसी का न्यूनन करती है। उक्त संशोधन में आगे उपबन्धित है कि कोई विधि जिसमें यह घोषणा अन्तर्विष्ट हो कि उसे ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए पारित किया गया है किसी

---

1. [1981] 3 उम० नि० प० 146=[1981] 1 एस० सी० आर० 206.
2. [1981] 4 उम० नि० प० 543=[1981] 2 एस० सी० आर० 1.
3. [1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० सी० 147.
4. [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

1983(10) eILR(PAT) SC 26

न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है । अनुच्छेद 31ग का एक परन्तुक है जो व्यादिष्ट करता है कि इस अनुच्छेद के उपबन्धों को लागू करने के पूर्व उस विधि को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो गई हो ।

ऐसा प्रतीत होता है कि तमिलनाडु विधानमण्डल ने अनुच्छेद 31ग में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों का उल्लेख करने में बहुत पूर्वावधानी बरती है तथा अपनी प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से उपबन्ध किया है, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, कि अधिनियम अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में प्रतिपादित सिद्धांतों को प्रभावी करने के आशय से पारित किया गया है ।

(2) यह कि जब नए अनुच्छेद 31ग के कारण विवाद उत्पन्न हुए तो उच्चतम न्यायालय के 13 न्यायाधीशों ने न केवल उक्त अनुच्छेद की परीक्षा की अपितु यह विनिश्चित करने के लिए कि संशोधित उपबन्ध कहां तक संविधान की आधारभूत संरचना पर प्रभाव डालता है, संविधान के अनेक अन्य उपबन्धों की भी परीक्षा की । यहां पर यह कह देना इस मामले के प्रयोजनार्थ पर्याप्त है कि जहां तक कि अनुच्छेद 31ग का संबंध है उसके बारे में सम्पूर्ण न्यायालय द्वारा एक मत होकर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 31ग का पहला भाग, जिसे कि संविधान (25वें संशोधन) अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है विधिमान्य है ।

(3) अतः यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 31ग ऐसी किसी विधि का, जिसे अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पारित किया गया है, पूर्ण संरक्षण प्रदान करता है जिससे कि उसे अनुच्छेद 14, 19 या 31 का अतिक्रमण करने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती । अनुच्छेद 31ग को लागू करने के लिए एकमात्र शर्त यह है कि उस विधि तथा अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उपबन्धों के बीच सीधा और युक्तियुक्त संबंध होना चाहिए और यह युक्तियुक्तता संबंध के बारे में होनी चाहिए न कि विधि के बारे में ।

58. पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए बहुत से निष्कर्ष तथा उस द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण कारण

अब प्रभावी नहीं रहते तथा अन्धकार में विलीन हो जाते हैं। पक्षकारों की ओर से काउन्सेल ने भी इस कठिनाई को महसूस करते हुए उन सभी दलीलों पर जोर नहीं दिया जोकि उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई थीं और उस द्वारा स्वीकार की गई थीं किन्तु अपनी दलीलों को अनुच्छेद 39(ख) और (ग) की संरचना और लागू होने तक ही सीमित रखा। उच्च न्यायालय के प्रति न्याय करते हुए, हम उसे दोष नहीं दे सकते हैं क्योंकि अनुच्छेद 31ग संबंधी विधि उसके निर्णय के दिए जाने के पश्चात् स्पष्ट हुई थी। अतः हम उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम को अभिखण्डित करने के संबध में दिए गए कारणों को बहुत ही संक्षेप में दे रहे हैं और उन बातों पर केवल जोर दे रहे हैं जो कि अब बची हैं।

59. प्रथमतः ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने प्रचालकों की ओर से काउन्सेल श्री चारी की इस दलील को स्वीकार किया कि अधिनियम के आधार पर वे पूंजी लगाने वाले व्यक्ति जो कि मंजिली या ठेका गाड़ियों के स्वामी थे पूर्ण रूप से अपने कारबार से अलग हो जाएंगे और इसलिए स्पष्टतः अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण होता है। चूंकि अनुच्छेद 31ग किसी ऐसी विधि को, जो कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों में अभिवृद्धि के लिए बनाई गई है, चुनौती देने के बारे में पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान करता है अतः यह दलील अब नहीं दी जा सकती और उसे उच्च न्यायालय द्वारा गलत रूप में स्वीकार किया गया था।

60. इस प्रकार अब हम **कर्नाटक**[1] के मामले में प्रचालकों को दिए गए प्रतिकर की प्रकृति पर विचार करेंगे जिसके बारे में यह प्रतीत होता है कि वह इस मामले के तथ्यों के साथ पूर्ण रूप मिलता-जुलता है। साथ ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि जैसे कि पहले ही विचार किया गया है, अनुच्छेद 31ग को देखते हुए कोई भी प्रतिकर आवश्यक नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 31(2) स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 31ग द्वारा अपवर्जित है। किन्तु इस धारणा पर कार्यवाही करते हुए कि किसी प्रकार का प्रतिकरात्मक अनुतोष आवश्यक होगा, हम इस प्रश्न पर आनुकल्पिक दलील के तौर पर विचार कर रहे हैं। प्रारंभ

1 [1978] 4 उम० नि० प० 324 = [1978] 1 एस० सी० आर० 641.

करते हुए, प्रतिकर के प्रश्न पर विचार करते हुए न्यायमूर्ति ऊंटवालिया ने **कर्नाटक**[1] के मामले में स्पष्ट रूप से इंगित किया था कि 25वें संशोधन के आधार पर प्रतिकर का प्रश्न नहीं उठ सकेगा, फिर भी **केशवानन्द भारती**[2] के मामले से अब तक यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अर्जित सम्पत्ति के बारे में संदेय रकम विधानमण्डल द्वारा नियत की जानी चाहिए अथवा अर्जन की विधि में अन्तर्विष्ट सिद्धांतों के आधार पर अवधारित की जानी चाहिए और वह पूर्ण रूप से मनमानी या भ्रामक या भयंकर रूप से कम कीमत नहीं होनी चाहिए तथा इस संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत प्रकट किया था —

> "इन अपीलों में विचारार्थ उत्पन्न हुए मुद्दे का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए इतना कह देना काफी होगा कि फिर भी **केशवानन्द भारती वाले मामले**[2] में न्यायाधीशों का बहुमत यह है कि अर्जित सम्पत्ति के लिए संदेय रकम, चाहे वह विधानमण्डल द्वारा नियत की गई हो अथवा अर्जन संबंधी विधि में दिए गए सिद्धांतों के आधार पर अवधारित की गई हो, सर्वथा मनमानी और भ्रामक नहीं हो सकती । जब हम ऐसा कहते हैं तो हम अनुच्छेद 31-ग के प्रभाव को ध्यान में नहीं रख रहे हैं, जिससे संविधान में पच्चीसवें संशोधन द्वारा (बहुमत द्वारा अविधिमान्य घोषित किए गए भाग को छोड़कर) अन्तःस्थापित किया गया है ।"

(रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

61. हमारे द्वारा अधोरेखांकित पंक्तियों में यह दर्शित करने के लिए महत्वपूर्ण बल दिया गया है कि प्रतिकर की आवश्यकता की बाबत दृष्टिकोण 25वें संशोधन के कारण, जिस द्वारा अनुच्छेद 31ग जोड़ा गया था पूर्ण रूप से बदल गया है और इसलिए न्यायमूर्ति ऊंटवालिया ने इस संबंध में कि 25वें संशोधन के पारित होने के पश्चात् भी प्रतिकर का प्रश्न आवश्यक होगा, विवक्षा न करने की बाबत काफी सावधानी बरती थी ।

---

1 [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

2 [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्ली० एस० सी० आर० 1.

62. ऐसा ही करते हुए न्यायमूर्ति अय्यर ने उसी मामले में निम्नलिखित मत प्रकट किया था :—

"प्ररूपित अन्तर सहित पूरा प्रतिकर । न्यायालय प्रत्यक्ष रूप से 'पर्याप्तता' को प्रश्नगत नहीं करेगा किन्तु संशोधित अनुच्छेदों का उसी अभाव या कमी को ध्यान में रखते हुए 'निर्वचन' करेगा ?

* * * *

न्यायालय अपना केवल यही समाधान कर सकता है कि रकम भयंकर या असैद्धांतिक रूप से मूल्य से कम न हो। . . —

* * * *

संदाय बाजार मूल्य से काफी कम हो सकता है ; यह हो सकता है कि सिद्धांतों में सब कुछ सम्मिलित न हो । किन्तु न्यायालय ग्रहण किए जाने में वहां के सिवाय परिवर्तन नहीं करेगा जहां संगणना के सिद्धांत अत्यधिक मनमाने और भ्रामक हैं, जिससे कि वे अन्तरआत्मा को धक्का पहुंचाने वाले हैं क्योंकि वह ऐसा नहीं कर सकता ।"

63. अतः केशवानन्द भारती[1] तथा कर्नाटक[2] के मामले की संवीक्षा करने पर अनुच्छेद 31(2) के संशोधन के पश्चात् "रकम" शब्द का प्रतिस्थापन किए जाने पर प्रतिकर के निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धांत संक्षेप में उल्लिखित हैं :—

(1) यह कि प्रतिकर मनमाना या भ्रामक नहीं होना चाहिए;

(2) यह कि प्रतिकर के रूप में नियत रकम असैद्धान्तिक नहीं होनी चाहिए;

---

[1] [1973] 1 उम० नि० प० 159=[1973] सप्ली एस० सी० आर० 1.

[2] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] एस० सी० आर० 641.

(3) यह कि दिया जाने वाला प्रतिकर इतना मनमाना या भ्रामक नहीं होना चाहिए जिससे कि वह अन्तःकरण को धक्का पहुंचाए, और

(4) यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिकर वास्तविक बाजार मूल्य के अनुसार हो अथवा यथायोग्य हो, क्योंकि यदि प्रतिकर अपर्याप्त है किन्तु भ्रामक नहीं है, तो अनुच्छेद 31(2) को अपेक्षाओं का पूर्णतः अनुपालन हो जाता है ।

64. अधिनियम की सुसंगत धाराएं, जोकि प्रतिकर के प्रश्न के संबंध में हैं, पूर्ण रूप से ऊपर प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार हैं और इसीलिए प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल को यह दलील कि प्रतिकर पूर्ण रूप से अपर्याप्त या भ्रामक है, नामंजूर की जानी चाहिए।

65. ऊपर चर्चित प्रतिकर के उपबन्धों के इन सिद्धांतों को लागू करते हुए हमें यह प्रतीत होता है कि इस मामले के तथ्य कर्नाटक के मामले के तथ्यों के समरूप हैं । जिन सिद्धांतों पर प्रतिकर उस मामले में दिया गया था उन्हीं को उसी रूप में वर्तमान अधिनियम में रख दिया गया है । प्रतिकर से संबंधित अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित रूप में संक्षेप में कही जा सकती हैं —

(1) एक नियमित ढंग और रीति जिसमें कि प्रतिकर का निर्धारण किया जाना है, अधिनियम को द्वितीय अनुसूची में दी गई है ।

(2) हमने पहले ही उल्लेख कर दिया है कि श्री रे ने बहस के दौरान स्वीकार किया था कि उक्त अनुसूची स्वतः पूर्ण नहीं है और मध्यस्थ या उच्च न्यायालय आवश्यकतानुसार उसमें मामूली परिवर्तन कर सकता है ।

(3) धारा 6 तथा द्वितीय अनुसूची के अनुसार जिन बातों तथा परिस्थितियों को विचार में लेना है वे स्पष्ट रूप से दर्शित करती हैं कि यदि उन बातों के आधार पर प्रतिकर

मंजूर किया जाता है तो उसे मनमाना, भ्रामक या भयंकर रूप से अन्तःकरण के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता ।

66. यह सच है कि दिया गया प्रतिकर बाजार मूल्य के अनुसार न हो और शायद अपर्याप्त भी हो किन्तु अब संशोधित अनुच्छेद 31(2) में अधिकथित मापदण्ड की यह कसौटी नहीं है । अतः इस आधार पर अधिनियम की सांविधानिकता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

67. यह सब कह देने और कर देने पर, प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि कम से कम मंजिली तथा ठेका गाड़ियों का कर्मशाला आदि सहित ग्रहण किया जाना बहुत ही कठोर उपबन्ध की कोटि में आता है जिससे कि वह समपहरण की प्रकृति का बन जाता है । हमने पहले ही इस दलील पर विचार किया है । जो कुछ हमने कहा है उसके अतिरिक्त यह और कह दिया जाए कि यदि एक बार राष्ट्रीयकरण की नीति लोक हित में और जनसाधारण के फायदे के लिए है तो उसके कारण कुछ हानियां, कुछ नुकसान, कुछ प्रतिकूल प्रभाव और कुछ कठोर परिणाम अवश्य निकलेंगे किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि पूर्वोक्त विचारों के कारण राज्य एकाधिकार या राष्ट्रीयकरण की नीति ज्यों की त्यों धरी रह जाए अन्यथा देश एक इंच भय प्रगति की ओर उस स्थान से नहीं बढ़ सकता जहां कि वह तब थी जब हमारा संविधान प्रवृत्त हुआ था । एकादशी पाढ़न[1] के मामले में न्यायाधिपति गजेन्द्र गडकर ने कहा था कि यह उच्च नीति के मामले हैं और न्यायालय तब तक उस नीति की पृष्ठभूमि पर विचार नहीं कर सकता जब तक कि स्वयं वह नीति स्पष्ट रूप से असांविधानिक या मनमानी न हो ।

68. हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि दिया गया प्रतिकर या अधिनियम की विभिन्न धाराओं में अन्तर्विष्ट सिद्धांत भ्रामक नहीं हैं अपितु वे उन प्रचालकों के लिए न्यायसंगत और पर्याप्त प्रतिकर हैं जिनकी सम्पत्तियों को ग्रहण किया गया है । वास्तव में ऐसी स्थितियों

[1] [1963] सप्ली० (2) एस० सी० आर० 691.

का सामना करने के लिए ही अनुच्छेद 31ग को पुरःस्थापित किया गया है जिससे कि प्रचालकों या ऐसे व्यक्तियों को होने वाले दुष्परिणामों के कारण, जिनकी सम्पत्तियां ले ली गई हैं, कोई बाधा न पहुंचे। इन कारणों से हम प्रत्यर्थियों के काउन्सेल की इस दलील को पूर्णतः निराधार होने के कारण नामंजूर करते हैं।

69. इसके बाद प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि मोटर यानों तथा कर्मशालाओं आदि सहित सम्पूर्ण परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण लोकहित में नहीं हो सकता क्योंकि उससे जनसाधारण को कोई लाभ नहीं होगा। साथ ही साथ यह भी दलील दी गई है कि जिस रीति और ढंग से राष्ट्रीयकरण नीति को अधिनियम में अधिनियमित किया गया है वह स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के दोनों उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नहीं है और इसके दो कारण हैं —

(1) यह कि गाड़ियों, औजारों, उपकरणों और कर्मशालाओं आदि का ग्रहण किया जाना अनुच्छेद 39(ख) द्वारा अनुध्यात नहीं है क्योंकि वे जंगम सम्पत्तियां हैं और इसलिए वे भौतिक सम्पदा नहीं है,

(2) यदि इस उपाय को कार्यान्वित किया जाता है तो इससे कुछ व्यक्तियों के हाथों में धन के संकेन्द्रण का निवारण नहीं किया जा सकेगा और इस कारण अनुच्छेद 39(ग) बिल्कुल भी आकृष्ट नहीं होता है।

70. हम एक-एक करके इन दलीलों पर विचार करेंगे। इस पहली दलील पर विचार करते हुए कि राष्ट्रीयकरण लोकहित में नहीं है, उक्त दलील को केवल नामंजूर करने के लिए ही बताया जा रहा है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से कर्नाटक[1] के मामले में इंगित किया जा चुका है कि इस प्रकार की राष्ट्रीयकरण नीति असंदिग्ध रूप से लोकहित में है।

---

1. [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

71. ब्लैक की लॉ डिक्शनरी (विशेष डोलक्स पंचम संस्करण) के पृष्ठ 1107 पर "लोक प्रयोजन" शब्दों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

> "यह शब्द शासकीय प्रयोजन का पर्यायवाची है· · · किसी लोक प्रयोजन या लोक कारबार का उद्देश्य किसी विशेष राजनीतिक खण्ड जैसे कि उदाहरणार्थ कोई राज्य, जिसको प्रभुतासम्पन्न शक्तियों का प्रयोग ऐसे लोक प्रयोजन या लोक कारबार की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है, के भीतर सभी रहने वालों या निवासियों के लोक स्वास्थ्य, क्षेम, नैतिकता, सामान्य कल्याण, सुरक्षा, समृद्धि, तथा संतुष्टि की अभिवृद्धि है ।"

72. इस विषय के बारे में अन्तिम निष्कर्ष **कर्नाटक**[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा किया गया है, जहां कि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि लोक परिवहन सेवा को चलाने के लिए किसी लोक निकाय का प्रयोजन असंदिग्ध रूप से लोक हित में है और इस संबंध में न्यायमूर्ति अय्यर ने निम्नलिखित मत प्रकट किया है—

> "लोक शक्ति के प्रयोग के माध्यम से, जो समाज द्वारा उसके विधानमण्डल जैसे अंगों से और कभी-कभी न्यायालय के माध्यम से भी नियंत्रित की जाती है और नियंत्रणीय है, उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से कार्य करते हुए, लोगों के फायदे के लिए सार्वजनिक परिवहन सेवा को चलाने का सार्वजनिक निकाय का प्रयोजन स्पष्ट रूप से सार्वजनिक प्रयोजन है ।"

और न्यायमूर्ति ऊंटवालिया ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित मत प्रकट किया—

> "यदि स्थिति के अनुसार ऐसा करना अपेक्षित हो तो जंगम सम्पत्ति का अर्जन वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए क्यों नहीं किया जा सकता । राज्य का कोई विशिष्ट वाणिज्यिक क्रियाकलाप स्वयं में लोक प्रयोजन हो सकता है ।"

1. [1978] 4 उम० नि० प० 324 = [1978] 1 एस० सी० आर० 641.

73. प्रस्तुत मामले में भी, यह देखने में आएगा कि राज्य ने मंजिली तथा ठेका गाड़ियों का राष्ट्रीयकरण जनसाधारण के सदस्यों को युक्तियुक्त दरों पर साधारण और तेज परिवहन उपलब्ध कराने के प्रयोजन से किया है और ऊपर निर्दिष्ट मतों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि इस प्रकार की नीति असंदिग्ध रूप से लोकहित में है और इसका महत्वपूर्ण लोक प्रयोजन है।

74. इसी दलील के अंग के रूप में उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 39 प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होगा। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, न्यायाधिपति ऊंटवालिया ने **कर्नाटक**[1] के मामले में संक्षिप्त रूप में ही इस दलील को नामंजूर कर दिया था और आगे बताया था कि जब कोई विधान मण्डल प्राइवेट प्रचालकों द्वारा यानों के चलाने में होने वाले गलत प्रयोग के निवारण की बात सोचता है और जनसाधारण या परिवहन में यात्रियों को बेहतर सुविधाएं प्रदान करने की बात सोचता है तो गाड़ियों का अर्जन या उस संबंध में ठेका गाड़ियों के प्रचालकों के अधिकारों तथा हितों के साथ-साथ उनकी भूमि भवन कर्मशाला इत्यादि का अर्जन सदैव अनुज्ञेय होगा। हम ऐसी नीति की बाबत किसी अधिक महत्वपूर्ण लोक-हित का अनुमान नहीं लगा सकते जहां कि विधान मण्डल ने अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उद्देश्यों की प्रोन्नति या प्राप्ति का अभिव्यक्त आशय व्यक्त किया हो विशेष रूप से तब, जैसा कि ऊपर उद्धृत है, जब उक्त दोनों खण्डों को एक विशेष प्रास्थिति प्रदान की गई है और स्वयं अनुच्छेद 31ग द्वारा पूर्ण संरक्षा दी गई है। अतः हम **कर्नाटक**[1] के मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत के साथ पूर्णतः सहमत हैं और अभिनिर्धारित करते हैं कि परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण निःसन्देह लोकहित में है।

75. जहां तक कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के लागू होने का संबंध है उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के आधार पर इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है —

(i) अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हुई है; और

---

1 [1978] 4 उम० नि० प० 324 =[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

1983(10) eILR(PAT) SC 2

(2) अनुच्छेद 39 जंगम सम्पत्तियों के संबंध में लागू नहीं होता है और चूंकि अधिनियम के अधीन राज्य द्वारा ग्रहण किए गए यान जंगम सम्पत्ति हैं अतः अनुच्छेद 39 प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होता है ।

76. ससम्मान हम यह कहेंगे कि यह मत सही नहीं है और अनुच्छेद 39(ख) में यथावर्णित भौतिक सम्पदा शब्दों के निर्वचन तथा विधि के संबंध में भ्रम होने के आधार पर व्यक्त किया गया है—वास्तव में अनुच्छेद 39(ख) में न तो जंगम सम्पत्ति का उल्लेख है और न ही स्थावर सम्पत्ति का । वास्तविक अभिव्यक्ति "समुदाय की भौतिक सम्पदा" का प्रयोग किया गया है । अनुच्छेद 39(ख) में यथाउपबन्धित "भौतिक सम्पदा" अति व्यापक है । जिसके अन्तर्गत न केवल प्राकृतिक या भौतिक सम्पदा ही आती है अपितु जंगम या स्थावर सम्पत्तियां भी आती हैं । ब्लैक की लॉ डिक्शनरी में "सम्पदा" (रिसोर्सेस) शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

> "धन या कोई सम्पत्ति जिसे आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संपरिवर्तित किया जा सकता है; धन कमाने के साधन या प्रदाय; धन प्राप्त करने की सामर्थ्य या आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति की सामर्थ्य ।"

77. मात्र इस तथ्य से कि सम्पदा भौतिक है "सम्पदा" शब्द की धारणा में कोई अन्तर नहीं आएगा । स्ट्राउड की जुडीशियल डिक्शनरी (जिल्द 3) के पृष्ठ 1634 पर "भौतिक" (मैटीरियल) शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

> "सामग्री, औजार या उपकरण, जिसका ऐसे कामगार द्वारा अपने व्यापार या व्यवसाय में उपयोग किया जाता है, यदि ऐसा कामगार खनन में नियोजित है· · · लकड़ी की आड़ या "निरोधकाष्ठ" यद्यपि "औजार या उपकरण" नहीं है तथापि वे इन शब्दों के अर्थ में "सम्पदा" हैं । "सम्पदा" के अंतर्गत रंग की बाल्टी तथा चित्रकार का ब्रुश भी आता है ।"

78. वैबस्टर की थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी के पृष्ठ 1934 पर "सम्पदा" (रिसोर्सेस) शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

"किसी देश या कारबार के" उपलभ्य साधन; संगणनीय धन (धन या सम्पत्ति के रूप में)"

वर्ड्स एण्ड फ्रेसिस (परमानेंट एडीशन) जिल्द 37ए, में "रिसोर्सेस" शब्द को पृष्ठ 16 पर इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

"सम्पदाओं के अन्तर्गत फार्म, वन, विनिर्माण, कला, शिक्षा आदि के उत्पाद आते हैं। किसी काउन्टी की सम्पदा के अन्तर्गत उसकी भूमि, काष्ठ, कोयला, फसल, सुधार, रेलवे, कारखाने और वे सभी चीजें आती हैं जो उसके धन के रूप में होती हैं या उसे वांछनीय बनाती हैं।"

79. **कर्नाटक**[1] के मामले में न्यायमूर्ति अय्यर ने निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

"राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के संदर्भ में समुदाय की भौतिक सम्पत्ति के अन्तर्गत समस्त राष्ट्रीय धन, न कि केवल प्राकृतिक साधन आ जाता है, सभी ऐसे प्राइवेट और सार्वजनिक साधन आ जाते हैं जिनसे भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है, न कि केवल सार्वजनिक कब्जाधीन वस्तुएं।"

80. अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में यथावर्णित "भौतिक सम्पदा" के अर्थों के प्रश्न पर **संजीव कोक मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी**[2] के मामले में इस न्यायालय के संविधान पीठ के हाल ही के विनिश्चय में विचार किया गया था जहां हम में से एक (न्यायमूर्ति रेड्डी) ने निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

"विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या कोककारी कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम ऐसी विधि है जो राज्य की नीति को यह सुनिश्चित करने के लिए अग्रसर करती है कि "समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार से वितरित किया जाना चाहिए जिससे कि यह अधिक से अधिक सामाजिक भलाई कर सके।" वस्तुतः कोयला ऊर्जा

---

1 [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

2 [1983] 2 उम० नि. प० 777=[1983] 1 एस० सी० सी० 147.

1983(10) eILR(PAT) SC 26

के लिए बहुत महत्वपूर्ण जाना जाने वाला स्रोत है और इसलिए यह महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सम्पदा है ।

*   *   *   *

श्री सेन ने यह दलील दी कि भौतिक सम्पदा को उन्हें वितरित किए जाने से पूर्व राज्य द्वारा पहले अर्जित किया जाता है । अर्जन के लिए उपबन्ध करने वाली विधि वितरण की विधि नहीं होती है । हम श्री सेन को इस दलील की प्रशंसा करने में असमर्थ हैं ।"

81. अतः उपरोक्त विनिश्चय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों अथवा प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल द्वारा हमारे समक्ष इस प्रश्न पर दी गई दलीलों के बारे में कि भौतिक सम्पदा की प्रकृति और स्वरूप क्या है, पूर्ण उत्तर देता है ।

82. प्रतिकर से संबंधित दलीलों और प्रचालकों को होने वाले प्रतिकूल प्रभाव और अधिनियम में अन्तर्विष्ट राष्ट्रीयकरण की नीति का संक्षेप में उल्लेख करते हुए स्थिति निम्नलिखित रूप में दिखाई देती है—

"प्रथमतः जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है कि यदि एक बार अनुच्छेद 31ग लागू हो जाता है तो संरक्षण का जाल इतना व्यापक है कि वह अनुच्छेद 31(2) को, जो अकेला ही **केशवानन्द भारती**[1] के मामले के पश्चात् प्रभावी बना रहता है, जड़ों को काट देता है ।"

हमने पहले ही इंगित किया है कि यदि राज्य कतिपय आवश्यक वस्तुओं या सम्पत्तियों का, अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में वर्णित प्रयोजनों के लिए व्यापार करने का एकाधिकार चाहता है तो अनुच्छेद 31 (2) पूर्ण रूप से अपवर्जित हो जाएगा, अन्यथा कोई भी राज्य एकाधिकार कदापि सम्भव नहीं है क्योंकि युक्तियुक्त रकम, जो कि प्रतिकर के रूप में देनी पड़ेगी, राज्य के वित्तीय साधनों या लोक राजकोष को इस हद तक पूर्णतः समाप्त कर सकती है कि किसी विशिष्ट व्यवसाय के एकाधिकार का आदर्श प्रयास लगभग असम्भव हो जाएगा जिसका तर्कसम्मत परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में अनुज्ञात प्रयोजन का कार्यान्वयन भी असम्भव हो जाएगा । इन कारणों से ही संसद

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159 = [1973] सप्ली० एस० सी० आर० 1.

ने अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों का अनुच्छेद 31(2) की परिधि से संरक्षण करना उचित समझा था ।

दूसरे 25वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31(2) ने "प्रतिकर" शब्द निकाल दिया है और उसके स्थान पर "रकम" शब्द रख दिया गया है जो राज्य को किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति लोक प्रयोजन के लिए ग्रहण करने की दशा में युक्तियुक्त रकम नियत करने का पर्याप्त विवेक प्रदान करता है । प्रस्तुत मामले में एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रयोजन, जो कि संविधान में उपदर्शित है, अन्तर्वलित होने के कारण प्रतिकर के रूप में मात्र मामूली सी रकम देना अनुच्छेद 31(2) में अपेक्षित शर्तों का पर्याप्त अनुपालन होगा । इस पर भी प्रस्तुत मामले में जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है प्रतिकर की एक स्पष्ट रीति उपबन्धित की गई है जिसका कि मध्यस्थ द्वारा निर्धारण किया जाएगा और उसकी राज्य के उच्चतम न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक संवीक्षा की जा सकती है । अनुसूची में प्रतिकर के सिद्धान्त अन्तर्विष्ट हैं और वह उन प्रचालकों को जिनकी गाड़ियां ले ली जाती हैं, पर्याप्त रूप से युक्तियुक्त प्रतिकर दिया जाना सुनिश्चित करती है । ऐसे मामलों में न्यायालय इस प्रकार नियत की गई रकम में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक न्यायालय के समाधानप्रद रूप में यह दर्शित न कर दिया जाए कि नियत की गई रकम इतनी अधिक भयंकर है कि वह न्यायालय के अन्तःकरण को झकझोर देती है । अनुसूची में दिए गए उपबन्धों का तथा प्रतिकर के अनुदान की रीति और ढंग का ध्यान रखते हुए हम यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हैं कि उपबन्धित प्रतिकर पूर्ण रूप से अपर्याप्त या बिल्कुल भयंकर है ।

83. अतः जहां तक कि मामले के इस पहलू का संबंध है मोटे तौर पर दो निष्कर्ष निकलते हैं—

(1) यह कि अनुच्छेद 31 (ग) के अभिव्यक्त उपबन्धों को देखते हुए, जो अनुच्छेद 31(2) को भी उस दशा में अपवर्जित करता है जब कोई सम्पत्ति अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट सिद्धान्तों को प्रभावी करने के प्रकट प्रयोजन से लोकहित में अर्जित की जाती है, कोई प्रतिकर आवश्यक नहीं है

1983(10) eILR(PAT) SC

और अनुच्छेद 31(2) के कारण कोई बाधा नहीं पहुंच सकती, और

(2) यह कि यद्यपि विधि प्रतिकर का उपबन्ध करती है तथापि न्यायालय प्रतिकर के ब्यौरों अथवा उसकी पर्याप्तता पर विचार नहीं कर सकते और राज्य के लिए यह साबित कर देना ही पर्याप्त है कि प्रतिकर युक्तियुक्त है और इतना भयंकर या भ्रामक नहीं है जिससे कि वह न्यायालय के अन्तःकरण को झकझोर दे ।

84. जिन व्यक्तियों की सम्पत्ति ग्रहण की जाती है वे यह शिकायत नहीं कर सकते कि उनको दिया गया प्रतिकर बाजार मूल्य के अनुसार होना चाहिए । यदि इसको स्वीकार कर लिया जाता है तो इससे अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) का मूल प्रयोजन और उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। प्रस्तुत मामले में ऊपर वर्णित दोनों शर्तों का अधिनियम के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए पूर्णतः समाधान हो गया है ।

85. प्रत्यर्थियों की ओर अन्तिम दलील यह दी गई है कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में वर्णित शर्तें या उद्देश्य इस कानून द्वारा संहिताकृत राष्ट्रीयकरण की नीति द्वारा पूरे नहीं होते हैं क्योंकि इस भाव में कोई भी वितरण नहीं होता कि ली गई सम्पत्ति समुदाय के विभिन्न सदस्यों के बीच उनके फायदे के लिए बांट दी जाएगी । इसके अतिरिक्त समुदाय के सदस्य परिवहन प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए परमिटों के अधीन प्रचालकों द्वारा उनको दी जा रही सेवाओं से भी वंचित हो गए हैं । जहां तक कि इस दलील का संबंध है यह वस्तुस्थिति को समझने में हुए गम्भीर भ्रम के आधार पर दी गई है। अनुच्छेद 39(ख) में प्रयुक्त "बंटा" शब्द का व्यापक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जिससे कि न्यायालय अनुच्छेद 39(ख) में अन्तर्विष्ट कानूनी उद्देश्य को पूर्ण और व्यापक प्रभाव दे सके। "बंटा" शब्द का संकीर्ण अर्थान्वयन उस मूल उद्देश्य को विफल कर सकता है जो कि अनुच्छेद प्राप्त करना चाहता है । ब्लैक की लॉ डिक्शनरी में "डिस्ट्रीब्यूशन" (बांटना) शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

"देने या अनेक व्यक्तियों के बीच विभाजन, अंशों में बांटना या टुकड़े करना, आबंटन, व्ययन, विभाजन ।"

86. इसी प्रकार से वैबस्टर की थर्ड इन्टरनेशनल डिक्शनरी के पृष्ठ 660 में "डिस्ट्रीब्यूशन" (बांटना) शब्द इस प्रकार परिभाषित है—

"किसी जनसमुदाय या समूह के सदस्यों के बीच उनका रखना या व्यवस्था करना; तर्कसम्मत समूह या वर्गों के बीच व्ययन या व्यवस्था : वर्गीकरण—अनेक मूल्यवान प्राणीविज्ञान संबंधी नमूनों का सही-सही विभाजन, किसी समूह के सदस्यों को (जैसे कि समाचार पत्र या माल) प्रतिदाय या हस्तांतरण (कम्पनी विक्रय और वितरण के भारसाधक को) (उपभोक्ताओं के लिए टेलिफोन डायरेक्टरी का वितरण) ; कोई तरीका, यंत्र या पद्धति जिस द्वारा मुख्य स्रोत से किसी चीज का वितरण होता है । वस्तुओं का विपणन अथवा क्रय ।"

87. रीडर्स डाइजस्ट द्वारा प्रकाशित "फैमिली वर्ड फाइन्डर" में "डिस्ट्रीब्यूशन" शब्द को पृष्ठ 237 में इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

"विकीर्णन, बिखेरना, फैलाना, परिचालन, श्रेणीविभाग, संगठन, प्रभाजन, आबंटन, बांटना ।"

88. अतः यह स्पष्ट है कि ऊपर निर्दिष्ट शब्दकोशों में यथा वर्णित "डिस्ट्रीब्यूशन" (बांट) शब्द द्वारा अनुध्यात संव्यवहारों की व्यापक परिधि को देखते हुए "बांटना" शब्द का शुद्धतः शाब्दिक भाव लगाना जिससे कि उसका अर्थ किसी विशिष्ट प्रकार के खण्ड या विशिष्ट व्यक्तियों के खण्ड का हो, उचित नहीं होगा । प्रभाजन , आबंटन, बांटना, वर्गीकरण शब्द स्पष्ट **रूप** से "बांटना" शब्द की व्यापक परिधि के भीतर आते हैं । इस रूप में **अर्थान्वयन** करने पर अनुच्छेद 39 (ख) में प्रयुक्त "बांटना" शब्द के अन्तर्गत उसके विभिन्न रूप, पहलू, ढंग और शब्द आएंगे जो कि बांटने की धारणा के व्यापक रूप होंगे । दूसरे शब्दों में "बांटना" शब्द का मात्र यह अर्थ नहीं है कि एक व्यक्ति की सम्पत्ति ग्रहण कर ली जाए और ऐसे भूमि सुधारों की भांति अन्य व्यक्तियों के बीच बांट दी जाए

1983(10) eILR(PAT) SC 26

जहां बड़े भूमिदारों की भूमि ले ली जाती है और भूमिहीन श्रमिकों को दे दी जाती है और इस बारे में विभिन्न शहरी तथा ग्रामीण अधिकतम सीमा अधिनियम आते हैं। यह बांटने का मात्र तरीका है किन्तु एकमात्र तरीका नहीं है। प्रस्तुत मामले में जैसा कि हमने पहले ही इंगित किया है, निःसन्देह बांटने का उपबन्ध है किन्तु एक भिन्न रूप में है। जहां तक कि प्रचालकों का संबंध है; उनका उद्देश्य खूब लाभ कमाना था और वे ऐसे गांव या स्थानों में गाड़ियां चलाना नहीं चाहते थे जहां कि यात्री कम हों तथा मार्ग दुविधापूर्ण हो। इसके कारण स्वभावतः समुदाय के उन गरीब सदस्यों को गंभीर असुविधा होती थी जो कि परिवहन द्वारा शहरों या अन्य क्षेत्रों में जाने की सुविधा से वंचित हो गए थे। परिवहन तथा एककों का राष्ट्रीयकरण करने से यात्री गाड़ियां राज्य के दूरस्थ कोने तक जा सकेंगी तथा यथासम्भव सुदूर भीतरी भागों में सुविधा प्रदान कर सकेंगी तथा इस प्रकार बेहतर और शीघ्रतर और अधिक उपयोगी सुविधाएं प्रदान करेंगी इससे लोगों के सामान्य फायदे के लिए निःसन्देह वितरण होगा और यह अनुच्छेद 39 के खंड (ख) के अंतर्गत स्पष्ट रूप से आएगा।

89. कर्नाटक[1] के मामले में "बांट" शब्द का स्पष्टतः निर्वचन किया गया था और न्यायमूर्ति अय्यर ने निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

> "निर्णायक शब्द "बंटा" है और यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद के मूल भाव को पूरी तरह प्रभावी करना होगा क्योंकि यह आर्थिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के मूल प्रयोजन को पूरा करता है। अनुच्छेद में प्रत्येक शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका है और सम्पूर्ण अनुच्छेद एक सामाजिक ध्येय रखता है। इसके अंतर्गत समुदाय की समस्त भौतिक सम्पदा आ जाती है। इसका कार्य ऐसी सम्पदा का वितरण करना है। इसका लक्ष्य इस प्रकार वितरण करना है जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो। यह ऐसे वितरण द्वारा स्वामित्व और नियंत्रण का पुनर्गठन करता है........।"

[1] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस०सी०आर० 641.

90. इसके अतिरिक्त **संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी**[1] के मामले में न्यायमूर्ति रेड्डी ने निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

> "वितरित करने का सरल शब्दकोशीय अर्थ भी 'आबंटित करना, वर्गों में या समूहों में विभाजित करना' है और "वितरण" के अन्तर्गत "व्यवस्था, श्रेणीकरण, स्थानीयकरण निपटान, प्रभाजन, मदों मात्रा आदि को विभाजित करने या प्रभाजित करने का ढंग, माल को समुदाय भर में संवितरित करने की पद्धति" आती है।"

91. न्यायमूर्ति रेड्डी द्वारा प्रयुक्त अति महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति यह है कि वे अर्थशास्त्री जो सामाजिक क्रान्ति लाने में विश्वास रखते हैं परिवहन के राष्ट्रीयकरण को समुदाय के फायदे के लिए बांटने की प्रक्रिया के रूप में समझने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं पाएंगे। यही यथार्थतः यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में अन्तर्विष्ट उद्देश्यों को सुनिश्चित करने में प्राप्त करना चाहता है।

92. परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करके परिवहन कारबार, जो कि कुछ पूंजीपतियों द्वारा चलाया जा रहा था, कुछ व्यक्तियों के हाथों में धन के संकेन्द्रण का निवारण करेगा और इस प्रकार जनसाधारण को लाभ पहुंचेगा।

93. मामले के इस पहलू पर **कर्नाटक**[2] के मामले में बहस की गई थी किन्तु उसका बलपूर्वक खण्डन किया गया। उस मामले में न्यायमूर्ति ऊंटवालिया ने इंगित किया था कि परिवहन सेवाओं का ग्रहण किया जाना निःसन्देह लोगों के सामान्य फायदे के लिए है और इसका आशय राज्य के राजस्व में वृद्धि करने का नहीं है क्योंकि यदि इन सेवाओं से कोई लाभ होता है तो वह समुदाय की बेहतरी के लिए बनाई गई प्रायोजनाओं को पूरा करने में लगेगा और उन्होंने निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

---

1 [1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० सी० 147.

2 [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

"विधान मण्डल ने यह सोचा कि ऐसे दुरुपयोग को रोकने के लिए और यात्रियों और सामान्य जनता के लिए बेहतर परिवहन सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए ठेका गाड़ी प्रचालकों की ठेका गाड़ियों, उनके अनुज्ञापत्रों और भूमियों, भवनों, कर्मशालाओं और अन्य स्थानों में या पर उनके सभी अधिकारों, हकों और हितों तथा सभी भण्डारों उपकरणों, मशीनरी, औजारों, संयंत्रों आदि का अर्जित किया जाना आवश्यक है, जैसा कि अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (2) में उपवर्णित है।"

94. इस प्रकार संक्षेप में स्थिति यह प्रतीत होती है कि राष्ट्रीयकरण नीति के कारण अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के दोनों उद्देश्यों की पूर्णतः पूर्ति होती है ।

95. अन्त में प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि यद्यपि परिवहन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है तथापि प्रचालकों की गाड़ियों को ले लेने के पीछे बिल्कुल भी कोई तर्क नहीं है । उनमें से कुछ भाड़ाक्रय के आधार पर उन्हें चला रहे थे । इस दलील में कोई बल नहीं है क्योंकि यदि एक बार यह मान लिया जाता है कि अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में वर्णित प्रयोजनों के लिए सम्पूर्ण सेवाएं जिनके अन्तर्गत उनके एकक, कर्मशालाएं आदि आते हैं कुछ प्रतिकर का संदाय करने पर ग्रहण की जा सकती हैं तो यह तथ्य कि गाड़ियों को छोड़ दिया जाना चाहिए, मात्र निराशापूर्ण दलील है ।

96. अतः प्रत्यर्थियों द्वारा हमारे समक्ष दी गई ये महत्वपूर्ण दलीलें हैं और अधिनियम को अभिखण्डित करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए ये उसके कारण हैं । हमारी यह राय है कि यह मामला वस्तुतः **कर्नाटक**[1] के मामले में दिए गए विनिश्चय के, जैसा कि उसे **संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी**[2] के मामले में दिए गए पश्चात्वर्ती विनिश्चय द्वारा पुनः बल और समर्थन मिला है, अनुसार है और प्रत्यर्थियों (प्रचालकों) द्वारा हमारे समक्ष दी गई सभी दलीलें असफल रहती हैं । अतः इस

1 [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.
2 [1983] 2 उम० नि० प० 777=[1983] 1 एस० सी० सी० 147.

अधिनियम को सभी प्रकार से सांविधानिक रूप से विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है । हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं । रिट याचिकाओं को खारिज करते हैं । उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं और अभिनिर्धारित करते हैं कि यह अधिनियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य है ।

97. तथापि, चूंकि अधिनियम के कुछ भाग समय बीतने पर पुराने पड़ गए होंगे अतः कुछ पारिणामिक संशोधन करने पड़ें । अपीलार्थी की ओर से श्री रे ने भी यह स्वीकार किया है कि जहां तक प्रतिकर के प्रश्न का संबंध है मध्यस्थ या प्रतिकर प्राधिकारी के लिए इस बात की छूट है कि वे अपने को अधिनियम की दूसरी सूची में अन्तर्विष्ट मापमानों तक यथावत रूप में सीमित न रखें अपितु वे परिस्थितियों के अनुसार मामूली परिवर्तन कर सकते हैं ।

98. चूंकि अपीलार्थी अपीलों में सफल हो गए हैं, हम 26 जून, 1973 को इस न्यायालय द्वारा पारित उस अन्तरिम आदेश को प्रतिसंहृत करते हैं जिसमें अपीलार्थियों को 100 रु० (एक सौ रुपए) प्रतिदिन प्रत्यर्थियों को देने का निदेश दिया गया था । इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में हम खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं देते ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

मा०